अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष-38, अंक-12, 1-15 फरवरी, 2015

विचारों को हड़पने की बौद्धिक राजनीति

गांधी की हत्या : क्या सच, क्या झूठ?

सर्व सेवा संघ
(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
सर्वोदय जगत
सत्य-अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक

वर्ष : 38, अंक : 12, 1-15 फरवरी, 2015

संपादक — बिमल कुमार — मो. : 9235772595
कार्यकारी संपादक — अशोक मोती — मो. : 7488387174

संपादक मंडल
डॉ. रामजी सिंह, भवानी शंकर 'कुसुम', बिमल कुमार, अशोक मोती

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ, साधना केन्द्र
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
Website : sssprakashan.com

शुल्क

मूल्य	:	पांच रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
आजीवन	:	1000 रुपये

खाता संख्या : 38350201000431O
IFSC No. UBIN-0538353

विज्ञापन दर

पूरा पृष्ठ	:	2000 रुपये
आधा पृष्ठ	:	1000 रुपये
चौथाई पृष्ठ	:	500 रुपये

इस अंक में...

1. कौन पूरा करेगा संपूर्ण क्रांति का... 2
2. पूंजी का साम्राज्यवाद... 3
3. उत्तरदायित्व का आरम्भ... 4
4. स्वराज्य के लिए मृत्यु का भय... 5
5. विचारों को हड़पने की बौद्धिक... 6
6. गांधी की हत्या : क्या सच, क्या... 9
7. चुनीभाई के लिए एक विदाई गीत... 11
8. श्रद्धांजलि : स्व. श्री चुनीभाई को... 12
9. चुनी काका : उज्ज्वलता का प्रकाश... 13
10. गांवों को न सहेजने का खामियाजा... 14
11. विकास की आड़ में संसाधनों की... 15
12. स्वदेशी शिक्षा, सच्ची शिक्षा 17
13. गतिविधियां एवं समाचार... 19
14. और अंततः/कविता... 20

'सर्वोदय जगत' में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। उनके साथ सर्व सेवा संघ या संपादक मंडल का सहमत होना जरूरी नहीं है।

कौन पूरा करेगा संपूर्ण क्रांति का मेरा सपना!

❑ जयप्रकाश नारायण

"1974 के आंदोलन के पीछे एक बहुत दूर का सपना मैंने देखा था। यह एक ऐसी क्रांति का दर्शन कराता था, जो सारे समाज को संपूर्ण रूप से बदल सकती थी। उसका नारा तो था संपूर्ण क्रांति का। सारे जीवन को बदलने की यह बात थी। व्यक्ति और समाज के हर पहलू को बदलने की शादी, ब्याह, जाति-पाँत, राजनीति, अर्थनीति, सभी के बदलने की और एक नया समाज कायम करने की वह चाह थी।"

"समाज में ऐसा-ऐसा आमूल परिवर्तन सरकार द्वारा कभी नहीं हो सकता। और सत्ता के स्थानों पर बैठे हुए नेताओं के भाषणों या आह्वानों से भी नहीं हो सकता। ऐसा परिवर्तन मात्र उन्हीं लोकनेताओं और लोकसेवकों द्वारा ही संभव हो सकता है जिन्होंने स्वेच्छा से, खुशी से अपने को सत्ता-स्थानों से दूर रखा हो और लोगों तक जिनकी पहुंच है यानी लोगों के बीच में रहकर जिन्होंने काम किया है। केवल सरकार से सब हो जायेगा, और सरकारी योजनाएं, बजट आदि द्वारा परिवर्तन आ जायेगा, ऐसा मानकर अभी भी हम चलेंगे, तब तो फिर हम भटकते ही रहेंगे। पूरी जनता की शक्ति देश के नवनिर्माण के कार्य में लगे, इस दिशा में हमें सतत प्रयास करने होंगे। स्त्री-पुरुष, बच्चे-बूढ़े, छात्र और शिक्षक, सैनिक और स्वयंसेवक सभी को इसमें शामिल होना चाहिए। लोगों का अपना अभिक्रम जागृत हो, इसको सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मानना चाहिए। लोगों को प्रोत्साहित करना चाहिए। स्वावलंबन और आपसी सहयोग रणभेरी देशभर में गूँज उठनी चाहिए। इसके अलावा अन्य किसी तरह से देश का नवनिर्माण शक्य नहीं हो सकेगा।"

"संपूर्ण क्रांति के लिए हमें ऐसे लोगों की आवश्यकता है, जो जनता के बीच जाकर निःस्पृह भाव से काम करें और जनता को जगायें। इस काम में शासन भी जितनी मदद कर सकता है, उतनी करे। लेकिन हमें नहीं भूलना चाहिए कि मुख्य रूप से यह काम कार्यकर्ताओं का है, क्रांति में विश्वास रखने वाले नौजवानों का है और जनता का है। जनक्रांति जनता के ही सहयोग से और उसी के हाथों होती है। संपूर्ण क्रांति सरकारी शक्ति से नहीं, जनता की ही शक्ति से हो सकती है।"

हमारे देश के नौजवानों के ऊपर यह बहुत बड़ी जिम्मेदारी आयी है कि वे इस क्रांति को सफल बनाने के लिए अपने प्राणों की बाजी लगा दें। अंग्रेजी राज्य के दिनों में जोशीले नौजवान सरकारी नौकरियों में जाने से इनकार कर देते थे। वे बड़ी-बड़ी तनख्वाहों और ऊंचे-ऊंचे पदों के मोह को ठुकरा देते थे। लेकिन आज तो हमारे नौजवान के सामने नौकरी का ही एक मुख्य आकर्षण है। फिर भी उनमें से जो अधिक भावनाशील और कम स्वार्थी हों, उन्हें तो यह समझना चाहिए कि सरकारी काम के जरिये राष्ट्र का निर्माण नहीं हो सकता। जिनके दिलों में राजनीतिक महत्त्वाकांक्षाएं हैं, उन्हें भी समझना चाहिए कि विधानसभाएं और सरकारें राष्ट्र का निर्माण नहीं कर सकतीं। इस काम के लिए तो जनता को ही जगाना होगा। इसके लिए सबसे अधिक महत्त्व का काम यह है कि लोगों के पास पहुंचा जाये, उनके साथ रहा जाये और आत्मनिर्भर बनने में उनकी मदद की जाये।"

"करोड़ों की आबादी वाले अपने इस देश में इस काम के लिए क्या कुछ हजार भाई-बहन ऐसे नहीं निकलेंगे, जो इतने स्वार्थ त्यागी, इतने साहसी और इतने दूरदर्शी हों कि अपने आपको इस बुनियादी काम में खपा दें? नौजवान अपने-अपने दिल टटोलें। क्या उन्हें आराम का सुकुमार जीवन जीना ही पसंद है? क्या वे सामाजिक और राजनीतिक होड़ाहोड़ी की ही दौर में शामिल होना चाहते हैं? जो इस दौड़ में शामिल होते हैं, वे आखिर तो जनता की पीठ पर ही सवार होते हैं। मुझे आशा है कि इस देश में बहुतेरे नौजवान हैं जो एक उदात्त ध्येय के लिए कष्टपूर्ण और संकटों से भरा जीवन जीने के लिए हँसते-हँसते तैयार हों। हमारे देश की आध्यात्मिक विरासत भी आज ऐसी एक अभिनव क्रांति के लिए हमें चुनौती दे रही है।"

'संपूर्ण क्रांति एक सतत क्रांति है, संपूर्ण क्रांति के आंदोलन की गाड़ी को आगे बढ़ते ही रहना है, किसी व्यक्ति के रहने या न रहने से इसकी प्रगति रुकनी नहीं चाहिए। हर व्यक्ति अपने सामर्थ्य के अनुसार अकेले अथवा दूसरों के सहयोग से इस काम को आगे बढ़ायें।' ❑

संपादकीय

पूंजी का साम्राज्यवाद

गांधी विचार की आवश्यकता आज अधिक महसूस हो रही है। जब गांधीजी जीवित थे, उस काल में अंग्रेजी शासन से मुक्ति, भारत के निवासियों का सर्वप्रमुख लक्ष्य था। गांधीजी का नेतृत्व सभी धाराओं के लोगों ने इस कारण ही स्वीकार किया था, क्योंकि भारत की जनता पर उनका सर्वाधिक प्रभाव था।

लेकिन गांधीजी उस युग को ही नहीं देख रहे थे, जिस युग में वे जी रहे थे। वे आगे आने वाले युग को भी देख रहे थे। जिस काल में भारत का स्वतंत्रता आंदोलन चल रहा था, वह युग योरोप के देशों द्वारा स्थापित पूंजीवादी-साम्राज्यवाद का युग था। लेकिन वे भविष्य की रेखाएं भी पढ़ रहे थे। वे देख रहे थे कि उपनिवेशों के स्वतंत्र होने के बाद एक नये तरह का साम्राज्यवाद स्वरूप ग्रहण करेगा। यह पूंजी का तथा पूंजीवादी बाजार का साम्राज्यवाद होगा।

पूंजी का साम्राज्यवाद केवल बड़े शहरों या बड़े उद्योगों तक सीमित नहीं रहेगा। दूरदराज गांवों में, आदिवासी क्षेत्रों में या कबीलाई इलाकों में जो पूंजी होगी तथा जो श्रम होगा, ये दोनों वैश्विक पूंजी से जुड़ जायेंगे तथा उसके अधीन हो जायेंगे। स्थानीय स्वायत्तता का आधार पूर्णतः खत्म हो जायेगा। गांधीजी की मृत्यु के 68 वर्षों बाद हम देख रहे हैं कि ऐसा ही हो रहा है।

दो प्रक्रियाओं के कारण हम यहां तक पहुंचे हैं। एक तो पूंजी का केन्द्रीकरण। पूंजी के केन्द्रीकरण के लिए सारी व्यवस्थाएं बनती चली गयीं। बहुराष्ट्रीय निगमों का विकास, अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं का विकास, विश्व व्यापार संगठन का जन्म आदि सभी प्रक्रियाएं पूंजी के केन्द्रीकरण को स्थापित करने की संस्थागत संरचनाएं हैं। विश्व व्यापार संगठन के आने के बाद से तो राजसत्ताओं की सम्प्रभुता का भी क्षरण हुआ है। पूंजी के केन्द्रीकरण की प्रक्रिया के कारण कहीं भी पूंजी स्वायत्त नहीं बनी रह सकती है। पूंजी पर लोक का स्वामित्व हो, अब यह किसी भी स्तर पर सहज नहीं रह गया है। इसके लिए व्यापक लोक-आंदोलन की आवश्यकता पड़ेगी। पूंजी के केन्द्रीकरण की प्रक्रिया के कारण ही शीर्ष केन्द्रमुखी श्रेणीबद्ध व्यवस्थाएं बढ़ती चली गयीं।

पूंजी के साम्राज्यवाद का एक दूसरा पहलू यह था कि श्रमिक एवं परम्परागत समुदाय (जो जल, जंगल, जमीन, खनिज आदि प्राकृतिक स्रोतों से जुड़े थे), उन्हें उत्पादन के साधनों से बेदखल और वंचित कर दिया गया। इतना ही नहीं श्रम को और प्रकृति प्रदत्त उपादानों को बाजार के अंतर्गत वस्तु के रूप में खरीद-फरोख्त की चीज बना दिया गया। पहले जिन वस्तुओं का मनुष्य उत्पादन करता था, उन्हीं वस्तुओं की खरीद-फरोख्त होती थी। अब श्रम को भी खरीदा-बेचा जाता है तथा जल-जंगल-जमीन-खनिज आदि को भी पूंजीवादी बाजार में खरीदा-बेचा जा रहा है।

पूंजी के इस साम्राज्यवाद को भारत में मजबूत आधार प्रदान करने का काम सन् 1990 से शुरू हुआ तथा वर्तमान सरकार इसे और अधिक स्थायी एवं गतिशील बनाने के लिए पूरी तरह से जुड़ गयी है।

'मेक इन इंडिया' का नारा इसी पूंजी के साम्राज्यवाद को भारत में मजबूत आधार देने तथा विस्तार देने की प्रक्रिया का हिस्सा है। इस नारे के तहत् वैश्विक पूंजी के नियंत्रण में भारत का श्रम एवं भारत की प्राकृतिक सम्पदाएं दोनों आ जायेंगी। और, जो उत्पादन होगा, वह विश्व भर में खपाया जायेगा। अर्थात वैश्विक पूंजी और वैश्विक बाजार को आगे बढ़ाने, अधिक गहरा करने में भारत के श्रम एवं भारत के प्राकृतिक सम्पदा का अधिकाधिक शोषण और दोहन होगा। शहरों में थोड़े से लोगों के लिए रोजगार का अवसर बनेगा, लेकिन भारत में व्यापक स्तर पर गांवों एवं आदिवासी क्षेत्रों को रोजगार एवं उत्पादन के साधनों से बेदखल कर दिया जायेगा।

गांधीजी ने इस दौर के आने की कल्पना कर ली थी। इनके परिणामस्वरूप न केवल भारतीय अर्थव्यवस्था पूर्णतः अपनी स्वतंत्रता खो देगी, बल्कि भारत एक नये तरह के साम्राज्यवाद का शिकार होगा, यह भी देख रहे थे। ग्राम-स्वराज्य, शरीर श्रम प्रतिष्ठा, ऐसी मशीनें जिससे श्रमिक उनकी मालकियत से बेदखल न हो, ट्रस्टीशिप का विचार—पूंजी को लोकस्वामित्व के नियंत्रण में लाने का विचार आदि सभी रचनात्मक कार्यक्रम पूंजीवादी बाजार, पूंजीवादी उत्पादन एवं पूंजीवादी संस्कृति के विकल्प के रूप में उन्होंने प्रस्तुत किये थे। 'मेक इन इंडिया' का विचार गांधी को पूर्णतः नकारने का एक विचार है तथा पूंजी के साम्राज्यवाद को मजबूत बनाने का माध्यम बनेगा।

भारत में गांधी विचार प्रणीत जो शक्तियां हैं, उन्हें एकजुट होकर इसके खिलाफ आंदोलन खड़ा करना होगा। किसी राजनीतिक पार्टी द्वारा यह कार्य नहीं होगा। यह कार्य लोक आंदोलन, लोकशक्ति एवं लोकसत्ता द्वारा ही होगा। अतः आंदोलन के साथ लोकसत्ता का निर्माण भी करते जाना होगा। आज पूंजी के साम्राज्यवाद के अंतर्गत जो अर्थव्यवस्था एवं समाज व्यवस्था विकसित हो रही है, उसमें हिंसा अंतर्निहित है—हिंसा संस्थागत स्वरूप ग्रहण कर चुकी है। अहिंसक संघर्षों के माध्यम से अहिंसा के अधिष्ठान पर खड़ी लोकसत्ता ही इसका विकल्प हो सकेगी।

विमल कुमार

स्वदेशी

उत्तरदायित्व का आरम्भ

❑ गांधी

'तिलक स्वराज्य-कोष' को भारत ने जो अभूतपूर्व समर्थन दिया, उससे प्रकट हो जाता है कि भारत को असहयोग के अपने नेताओं पर भरोसा है। क्या नेता अपने-आपको इस भरोसे के योग्य सिद्ध करेंगे? अनेक लोगों ने बड़ी उदारता से दान दिया है, और सभी ने यह सवाल पूछा है कि इस निधि का उपयोग किस प्रकार किया जायेगा। मैंने निःसंकोच यही उत्तर दिया है कि प्रांतीय कांग्रेस कमेटियों के नेता जिम्मेदार और परखे हुए व्यक्ति हैं। यदि हम इस कोष में मिली पाई-पाई का लेखा-जोखा नहीं रखते और धन का उपयोग बुद्धिमानी से नहीं करते तो हमें सार्वजनिक जीवन से बाहर कर दिया जाना चाहिए। हमें याद रखना चाहिए कि गरीब-से-गरीब आदमियों ने अपनी शक्ति भर दिया है। कई लोगों ने तो अपना सब-कुछ दे दिया है। धोबी, बढ़ई, लुहार, ईसाई, यहूदी, पारसी, सिख, जैन, मुसलमान और हिन्दू—सभी ने यथाशक्ति दिया है। 16 जून तक, जब मुम्बई में संग्रह का काम आरम्भ हुआ, सारे भारत में प्राप्त हुई धन राशि 30 लाख रुपये थी—और शायद इतनी भी नहीं थी। मुझे विश्वास था, जून के अंत तक मुम्बई के अतिरिक्त दूसरे प्रांतों में ही चालीस लाख रुपये इकट्ठे हो जायेंगे। इसलिए सारे भारत ने 14 दिनों में अथक प्रयत्न करके प्रतिदिन 5 लाख रुपये के हिसाब से धन दिया। मुम्बई के बाहर के प्रांतों ने 30 जून तक मुम्बई के जितने ही समय में 38 लाख रुपये जमा कर लिये थे। रिकार्ड बुरा नहीं रहा। इस विश्वास को हम किस प्रकार बनाये रख सकते हैं? हमें हिसाब इस तरह बिलकुल ठीक-ठीक रखना चाहिए कि एक बच्चा भी उसे देख और समझ सके। असहयोग के अतिरिक्त और किसी भी उद्देश्य के लिए इस धन का उपयोग नहीं होना चाहिए और सामान्यतः नीचे लिखे उद्देश्यों के अतिरिक्त और किसी उद्देश्य के लिए नहीं : (1) चरखे और खादी के प्रचार के लिए, (2) अस्पृश्यता निवारण, और इस प्रकार दलित जातियों के उत्थान के लिए, (3) राष्ट्रीय पाठशालाओं—जहां कताई और बुनाई भी शिक्षण के विषय हों—के संचालन के लिए और (4) नशाबंदी आंदोलन को आगे बढ़ाने के लिए।

इन उद्देश्यों में राष्ट्रीय सेवा को जारी रखना भी शामिल है। इस सेवा के द्वारा ही हम ऊपर लिखे उद्देश्यों को प्राप्त कर सकेंगे और ऊपर लिखे उद्देश्यों को प्राप्त करना यह दिखाना है कि हम स्वराज्य के योग्य हैं और उसके उचित पात्र हैं।

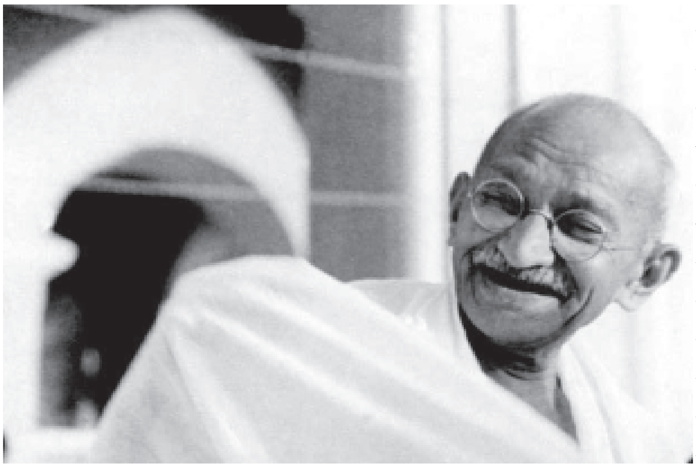

मैं सभी प्रकार की समितियों को सतर्क कर दूं कि वे इस कोष से मिलने वाले सूद पर निर्वाह करने की बात न सोचें। रुपया सूद पर लगाना और फिर सूद से ही काम चलाना राष्ट्र पर और अपने-आप पर अविश्वास जाहिर करता है। राष्ट्र का विश्वास ही हमारी पूंजी होनी चाहिए और समय-समय पर उससे मिलने वाला सहयोग ही हमारा सूद। **यदि हम राष्ट्र के प्रतिनिधि होने का दावा करते हैं तो हमें उसकी सेवा के लिए बनायी गयी संस्थाओं का वार्षिक व्यय चलाने के लिए उस पर भरोसा करना चाहिए। सूद पर निर्वाह करने की प्रवृत्ति हमें गैर-जिम्मेदार बनाती है। भारत के विभिन्न भागों में धर्म के नाम पर जो अपार धनराशि पड़ी-पड़ी सड़ रही है, उसके कारण ऐसी तमाम धार्मिक संस्थाएं यदि बाकायदा भ्रष्टाचार के अड्डे नहीं बन गयी हैं तो ढोंग-मात्र बनकर तो रह ही गयी हैं। इसलिए यदि हम पिछले अनुभव से लाभ उठाना चाहते हैं, तो हमें प्राप्त हुआ सारा धन अगले छः महीनों में खर्च कर देना चाहिए।** मैंने बेजवाड़ा में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सामने वित्तीय कार्यक्रम पेश किया था। वह मैंने इसलिए किया था कि मुझे मुझे मालूम था कि हमारे पास ईमानदार और योग्य कार्यकर्ता हैं जो राष्ट्रीय और प्रांतीय स्तर पर उचित रूप से धन का उपयोग कर सकते हैं और फिर हमें इस वर्ष के लिए उस धनराशि की आवश्यकता भी थी। **विदेशी कपड़े के बहिष्कार में हम तब तक सफल नहीं हो सकते, जब तक हम चरखे, हाथकता सूत और खादी खरीदने में खुले हाथों खर्च न करें। स्वदेशी का प्रचार हमें बराबर तब तक करते रहना चाहिए जब तक चरखा व्यावसायिक रूप से लाभदायक बनकर घर-घर में न पहुंच जाये।** वर्ष भर में खर्च कर सकने की दृष्टि से एक करोड़ रुपये बहुत बड़ी रकम नहीं है, क्योंकि उसका वितरण एक बड़े भू-भाग में करना है। मेरा सुझाव है कि इस मास के अंत तक प्रत्येक प्रांत अपना एक बजट बनाये और ठीक उतना ही खर्च करे—न ज्यादा, न कम। मैंने एक महीने का सुझाव इसलिए दिया है कि उससे पहले विभिन्न प्रांत शायद ही अपना हिसाब-किताब ठीक कर पायें और शायद ही चंदे के वायदों की रकम वसूल कर पायें। और फिर हमें देखना चाहिए कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी आने वाले महीनों के बारे में क्या निर्णय करती है। यदि हम सुव्यवस्थित रूप से यह कार्यक्रम पूरा कर लें तो हम सितंबर के अंत तक नहीं तो दिसंबर से पहले ही स्वराज्य अवश्य प्राप्त कर लेंगे। ❑

(संपूर्ण गांधी वांगमय, खंड-20, पृ. 335-337)

स्वराज्य के लिए मृत्यु का भय त्यागें

❑ गांधी

मैं स्वराज्य की व्याख्याएं एकत्र कर रहा हूं। उनमें एक व्याख्या यह भी है—मृत्यु के भय का त्याग। जिस देश के लोग मृत्यु के भय से भीत रहते हैं, वे न तो स्वराज्य प्राप्त कर सकते हैं और न उसे सँभाल ही सकते हैं। अंग्रेज लोग तो मौत को जेब में लिये घूमते हैं, अरब और काबुली भी मरण को एक मामूली अलामत समझते हैं। जब उनके यहां कोई मर जाता है तब वे रोते-पीटते नहीं। बोअर-स्त्रियां तो जानती ही नहीं थीं कि मरण का भय क्या चीज है। बोअर-युद्ध के समय हजारों बोअर-युवतियां विधवा हो गयीं। पर उन्होंने इसकी कुछ परवाह न की। उन्होंने अपने दिल को समझाया कि मेरे पति या पुत्र मर गये तो क्या हुआ, मेरे देश की इज्जत तो कायम रही। यदि देश गुलाम हो जाता तो पति के रहने से भी क्या होता? अपने गुलाम बेटे की परवरिश करने की अपेक्षा तो उसकी लाश को कब्र में दफना देना और उसकी आत्मा को याद करते रहना ही अच्छा है। इस तरह धीरज रखकर असंख्य बोअर-रमणियों ने अपने प्रियजनों का बिछोह सहा।

ये उन लोगों के उदाहरण हैं जो खुद तो मरते ही हैं और दूसरों को भी मारते हैं। परंतु जो लोग मारते नहीं सिर्फ मरते-भर हैं, उनका क्या पूछना? ऐसों की तो संसार पूजा करता है। ऐसों की बदौलत देश का उत्कर्ष होता है। अंग्रेज और जर्मन दोनों आपस में लड़े। दोनों ने मार मारी और मार खाई। फल यह हुआ कि शत्रुता बढ़ गयी, अशांति बढ़ गयी और आज यूरोप की दशा दयनीय हो गयी है; पाखण्ड की वृद्धि हुई है और वे एक-दूसरे को फाँसने का प्रयत्न कर रहे हैं। *परंतु जिस मृत्यु-भय को छोड़ने का अथक प्रयत्न हम कर रहे हैं वह तो एक शुद्ध यज्ञ है और उसके द्वारा हम, थोड़े ही समय में, बड़ी भारी विजय प्राप्त करने की आशा रखते हैं।*

जब हमें स्वराज्य मिल जायेगा तब या तो हमें से अधिकतर लोगों ने मौत का डर छोड़ दिया होगा अथवा हमें स्वराज्य ही न मिला होगा। अभी तक तो देश के ज्यादातर नौजवान ही मरे हैं। अलीगढ़ में जितने लोगों की जानें गयीं हैं वे सब 21 वर्ष से कम अवस्था वाले थे। उन्हें तो कोई जनता भी नहीं था। पर अब भी यदि सरकार खून-खराबी करने पर तुली ही हो तो मैं यह विश्वास किये बैठा हूं कि उस समय देश के प्रथम श्रेणी के किसी व्यक्ति की बलि होगी।

बालक, जवान या बूढ़े मरें, हम इससे भयभीत क्यों हों? कोई पल ऐसा नहीं जाता जब इस जगत् में कहीं किसी का जन्म और कहीं किसी की मृत्यु न होती हो। पैदा होने पर खुशियां मनाना और मौत से डरना बड़ी मूर्खता है, यह बात हमें सदा ही अनुभव करनी चाहिए। जो लोग आत्मवादी हैं—और हममें कौन ऐसा हिन्दू, मुसलमान या पारसी होगा जो आत्मा के अस्तित्व को न मानता हो—वे जानते हैं कि आत्मा कभी मरती नहीं। यही नहीं बल्कि जीवित और मृत, समस्त प्राणी एक ही हें, उनके गुण भी एक ही हैं। इस दशा में, जबकि जगत् में उत्पत्ति और लय पल-पल पर होती ही रहती है, हम क्यों खुशियां मनायें और क्यों शोक करें? सारे देश को यदि हम अपना परिवार मानें—यदि हमारी भावना इतनी व्यापक हो—और देश में जहां-कहीं किसी का जन्म हुआ हो उसे हम अपने ही यहां हुआ मानें तो फिर आप कितने जन्मोत्सव मनायेंगे? देश में जहां-जहां मृत्यु हो उन सबके लिए यदि हम रोते रहें तो हमारी आंखों के आंसू कभी सूखेंगे ही नहीं, यह सोचकर हमें मृत्यु का डर छोड़ देना चाहिए।

और जो मनुष्य मृत्यु का भय छोड़ देगा उसे जेल का भय क्योंकर होगा? पाठक यदि विचार करेंगे तो उन्हें मालूम हो जायेगा कि स्वराज्य-प्राप्ति में हमें जो विलम्ब हो रहा है उसका एकमात्र कारण है—हम लोगों में मृत्यु तथा उसके हलके दुःखों को सहने की शक्ति का अभाव।

ज्यों-ज्यों अधिकाधिक निरपराध मनुष्य जान-बूझकर मौत को गले लगाने के लिए तैयार होते जायेंगे त्यों-त्यों दूसरे लोगों का बचाव होता जायेगा और दुःख भी कम होता चला जायेगा। जो दुःख खुशी जी चुराता है वह बहुत कष्ट उठाता है और संकट के उपस्थित होने पर निर्जीव-सा हो जाता है। जो आनन्द के साथ दुःख का स्वागत करने के लिए पैर बढ़ाता है उसे वह आरम्भिक दुःख, जो केवल दुःख की कल्पना से ही उत्पन्न होता है, कैसे हो सकता है? आनन्द पीड़ा पर क्लोरोफार्म का काम करता है।

इस विषय पर इस समय जो मुझे इतना लिखना पड़ा सो इसलिए कि यदि "हमें इसी वर्ष स्वराज्य प्राप्त करना हो तो मृत्यु का विचार भी कर लेना होगा।" जो लोग पहले से तैयारी कर रखते हैं वे आपत्ति से बच जाते हैं, हमारे विषय में भी ऐसा हो सकता है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि स्वदेशी-आंदोलन हमारी ऐसी ही पेशबंदी है। यदि इसमें हमारी फतह हो गयी तो मैं समझता हूं, सरकार को अथवा और किसी को हमारी अग्नि-परीक्षा की आवश्यकता ही न रहेगी।

परंतु इतना होने पर भी, यह आवश्यक है कि हम गफलत में न रहें। सत्ता अंधी और बहरी होती है। वह अपने बिलकुल पास की घटनाओं को भी नहीं देख पाती। अपने कान के पास कोलाहल भी वह नहीं सुन सकती। अतएव यह नहीं कहा जा सकता कि जो सरकार मदोन्मत्त है वह क्या नहीं कर बैठेगी। इसलिए मेरे मन में यह खयाल उठा कि अब देश-सेवकों को मृत्यु, जेल अथवा दूसरी आपत्तियों का एक मित्र की तरह स्वागत करने की तैयारी कर रखनी चाहिए।

एक शूरवीर जिस प्रकार हँसते हुए मृत्यु का स्वागत करता है उसी प्रकार वह सावधान भी रहता है। शांतिमय संग्राम में तो गफलत के लिए गुंजाइश ही नहीं है। जो नीति और सदाचार के विरुद्ध हैं, हम ऐसे अपराध करके न तो जेल जाना चाहते हैं और न फांसी पर ही लटकना चाहते हैं। हमें तो सरकार के अन्यायपूर्ण कानूनों का सामना करते हुए बलदान होना है। ❑

(संपूर्ण गांधी वांगमय, खंड-20, पृ. 524-526)

आमुख

विचारों को हड़पने की बौद्धिक राजनीति

❑ अभय कुमार दुबे

नब्बे के दशक के मध्य में जिस समय राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ द्वारा प्रायोजित स्वदेशी जागरण मंच की गतिविधियां अपने शीर्ष पर थीं, कन्नड़ के विख्यात साहित्यकार—मनीषी डी. आर. नागराज ने स्वदेशी के इस संस्करण को गांधी के स्वदेशी की श्रेणी में मानने से इनकार कर दिया था। उन्होंने इसे गांधी से अलगाने के लिए संघ-स्वेदशी करार देते हुए अनर्थकारी विचारों की कोटि में रखा। प्रस्तुत आलेख राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ द्वारा गांधी-विचारों को हड़पने की बौद्धिक राजनीति को स्पष्ट करता है। **—कार्य. सं.**

कन्नड़ के विख्यात साहित्यकार—मनीषी नागराज ने संघ-स्वदेशी को **'विचारों को हड़पने की राजनीति'** के रूप में चित्रित करते हुए दिखाया कि नारा रचने और सांस्कृतिक प्रतीकों के उपयोग के स्तर पर संघ परिवार ने उसी आदमी का इस्तेमाल किया है जो उन्हीं के हाथों मारा गया था। नागराज ने इसे 'शमशान की प्रतीकात्मक राजनीति' भी कहा। संघ स्वदेशी के विचारकों डॉ. यशवंत पाठक और प्रभाकर घाटे के लेखों के साथ-साथ संघ के स्वदेशी से संबंधित दस्तावेज से उद्धरण देते हुए नागराज ने रेखांकित किया कि कांग्रेस सरकार की नई अर्थनीति की वामपंथियों जैसी आलोचना करने में संघ परिवार के पत्र *ऑर्गनाइजर* को महारत हासिल हो गयी है। नागराज आज हमारे बीच नहीं हैं। अगर वे होते तो कहते कि देखो मेरा कहना कितना सही था। लेकिन नागराज के विश्लेषण में एक पहलू और था जो सामने आने की प्रतीक्षा कर रहा था।

स्वदेशी के संघी संस्करण में वामपंथी आभा देखने वालों में बाजारवादी अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका *द इकॉनॉमिस्ट* सबसे आगे साबित हुई। 1998 में जब संघ की राजनीतिक शाखा भारतीय जनता पार्टी ने केन्द्र में सत्ता संभाली तो इस पत्रिका में लिखा, ''भाजपा को अकसर दक्षिणपंथी कहा जाता है। इसे राष्ट्रवादी कहना ज्यादा बेहतर होगा। यह पार्टी पहले से आत्म-निर्भरता की नीति पर बल देती रही है। इसके कई सदस्य विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनियों को शुरुआती किस्म के साम्राज्यवादी के रूप में देखते हैं। यह विश्व व्यापार संगठन पर भारत की संप्रभुता के हरण का आरोप लगाती है। इस तरह के मसलों पर भारतीय जनता पार्टी और भारतीय वामपंथियों में कोई अंतर नहीं है।'' जाहिर है कि विचारों को हड़पने की इस बौद्धिक राजनीति के तहत न केवल गांधी से स्वदेशी का सूत्र हड़पा गया था, बल्कि वामपंथियों की राजनीतिक अभिव्यक्तियों से भी कई बातें झपट ली गयी थीं।

संघ-स्वदेशी के इस 'वामपंथ' की सैद्धांतिक अभिव्यक्ति का नमूना 1992 में उस समय देखने को मिला जब एम. जी. बोकाड़े की पुस्तक *'स्वदेशी इकॉनॉमी फॉर द वार ऑफ इकॉनॉमिक इंडिपेंडेंस अगेंस्ट इकॉनॉमिक इम्पीरियलिजम'* का स्वदेशी जागरण मंच ने प्रकाशन किया। बोकाड़े की शख्सियत भी कुछ इसी प्रकार की थी जिससे संघ-स्वदेशी की 'वामपंथी' आभा में और चमक पैदा हो जाती थी। (बोकाड़े सत्तर के दशक में फुले-आम्बेडकर-मार्क्स को मिला-जुला कर पढ़ने वाली रैडिकल धारा के बुद्धिजीवी रह चुके थे। इसके बाद उन्होंने विदर्भ में कपास के किसानों के आंदोलन की सैद्धांतिक मदद की।) संघ-स्वदेशी को अपनी कार्यक्रमगत राजनीतिक, अभिव्यक्ति 1992 में ही जारी किये गये भाजपा के अर्थनीति संबंधी दस्तावेज *'ह्यमैनिस्टिक एप्रोच टू इकॉनॉमिक डेवलपमेंट'* में मिली। इस दस्तावेज का आह्वान था : 'भारत को उदारी-करण, औद्योगीकरण और आधुनिकीकरण करना ही होगा। लेकिन ऐसा करने के लिए उसे भारतीय विधि अपनानी होगी।...भारत को अपने ही प्रकाश से प्रकाशित होना होगा। तीन साल बाद 1995 में भाजपा और शिव सेना की गठजोड़ सरकार ने महाराष्ट्र में बिजली बनाने वाले अमेरिकी कंपनी एनरॉन दाभोल परियोजना को निरस्त करके जम कर तारीफ बटोरी। इस प्रोजेक्ट को शरद पवार की कांग्रेसी सरकार ने मंजूरी दी थी। संघ-स्वदेशी के सिद्धांतकारों ने इस फैसले को अपनी 'भारतीय विधि' के अनुसार करार दिया। वैसे भी भाजपा-शिव सेना ने इस परियोजना को खारिज करने के वायदे के साथ ही चुनाव लड़ा था। लेकिन, उस समय सभी लोग चकित रह गये जब महाराष्ट्र सरकार ने एनरॉन के साथ दोबारा समझौता वार्ता की और दाभोल परियोजना पर मुहर लगा दी। नये करार के तहत एनरॉन को और सस्ती दर पर बिजली बनाने और उसी महंगी दर पर बेचने की छूट मिल गयी जिस पर इस सरकार ने पहले आपत्ति की थी। जब वामपंथी आलोचकों ने इस नये करार को अदालत में चुनौती दी तो भाजपा की सरकार के प्रतिनिधि ने बिना पलक झपकाए जज से कह दिया कि उसने जो एनरॉन-विरोधी मुहिम चलायी थी, वह तो राज्य विधानसभा का चुनाव जीतने के लिए राजनीतिक हथकंडा मात्र था।

लेकिन इस घटना के बावजूद स्वदेशी जागरण मंच ने भाजपा-शिव सेना गठजोड़ के खिलाफ कोई मुहिम नहीं चलायी, और अपना

'वामपंथी' संघ-स्वदेशी जारी रखा। 1998 में जब भाजपा लोकसभा का चुनाव लड़ने उतरी तो उसने ऐलान किया : 'शुल्क-दर घटाने की पथ भ्रष्ट नीतियों और भारतीय उद्योग को समान धरातल न देने के कारण भारत की अर्थव्यवस्था जबरदस्त दबाव में आ गयी है।...हालांकि कुछ अधिसंरचनात्मक क्षेत्रों में विदेशी पूंजी की भूमिका बेहद अहम है, लेकिन स्पष्ट है कि इस पूंजी का भारतीय अर्थव्यवस्था को न के बराबर ही फायदा होने वाला है।...भले ही हर देश का घोषित एजेंडा मुक्त व्यापार है, पर असली एजेंडा तो आर्थिक राष्ट्रवाद ही होता है। भारत को भी अपने राष्ट्रीय एजेंडे पर चलना चाहिए। इसके मर्म में स्वदेशी का विचार है।' भाजपा ने **'कैलिबरेटिड ग्लोबलाइजेशन'** की वकालत की, जिसका मतलब था अर्थव्यवस्था के भीतर उदारीकरण की नीति जारी रखना, कुछ अधिसंरचनात्मक क्षेत्र में विदेशी पूंजी को आमंत्रित करना और भारतीय उद्योग को विदेशी प्रतियोगिता से बचाने के साथ-साथ समग्र अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले विदेशी प्रभाव को विनियमित करने के लिए राज्य के हस्तक्षेप की वकालत करना। भाजपा ने अपनी पीठ थपथपाते हुए कम्युनिजम और कैपिटलिजम को विदेशी मॉडल करार देते हुए खारिज कर दिया और देशी परंपराओं से उर्जस्वित मॉडल की पैरोकारी की। 'संघ के विचारधारात्मक सिपहसालार मुरली मनोहर जोशी इसी आग्रह को व्यावहारिक नजरिये से इस तरह कह चुके थे : 'कम्प्यूटर चिप्स यस, पोटाटो चिप्स नो'।

भाजपा की इस 'कैलिबरेटिड ग्लोब-लाइजेशन' की असली परीक्षा उस समय शुरू हुई जब लालकृष्ण आडवाणी अपने नेतृत्व वाले राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठजोड़ की सरकार के शपथ लेने के बाद संसद के केन्द्रीय कक्ष में **राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ** के देशभर में फैले हुए स्वयंसेवकों को धन्यवाद दे रहे थे कि उनके परिश्रम के कारण ही यह सरकार बनी है। संभवतः ठीक उसी समय नागपुर और झंडेवालान स्थित संघ के रणनीतिकार यह तय करने में लगे हुए थे कि नयी सरकार का वित्त मंत्री कौन होना चाहिए। नये प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी की पसंद थे जसवंत सिंह जो पी. वी. नरसिंह राव की कांग्रेस सकरार के पांच सालों 'शो फाइनेंस मिनिस्टर की भूमिका निभाते रहे थे। लेकिन संघ ने जसवंत सिंह को वित्त मंत्री बनने से रोक दिया। उसे शक था कि स्वतंत्र पार्टी की पृष्ठभूमि वाले जसवंत सिंह संघ-स्वदेशी के वैचारिक मर्म को ठीक से लागू नहीं कर पायेंगे। इसलिए नागपुर ने यशवंत सिन्हा के पक्ष में फतवा जारी किया, क्योंकि सिन्हा चंद्रशेखर की 'समाजवादी' सरकार में वित्तमंत्री रह चुके थे। पर संघ सिन्हा से क्या करवाना चाहता था?

यशवंत सिन्हा ने **'कैलिबरेटिड ग्लोबलाइजेशन'** की अनूठी व्याख्या की। वित्तमंत्री के रूप में शपथ लेने के बाद उन्होंने कहा : ''भारत को अपनी फौजी ताकत के सापेक्ष शक्तिशाली आर्थिक राष्ट्र भी बनना है। और आप आर्थिक ताकत केवल तभी बन सकते हैं जब अपनी शक्तियों की परीक्षा दूसरों के मुकाबले करके दिखायें। इसका मतलब है बाहर निकलना और दुनिया के पैमाने पर प्रतियोगिता करना, साथ में दुनिया को अपने यहां आने देना और प्रतियोगिता करने देना।...मैं स्वदेशी को बुनियादी रूप से एक ऐसे विचार के रूप में समझता हूं जिसका मकसद भारत को महान बनाना है।...हम महान बन सकते हैं प्रतियोगिता करने में सक्षम होकर ही। मेरा विचार है कि प्रतियोगिता ही असली चीज है।...इसीलिए स्वदेशी, ग्लोबलाइजर और लिबरलाइजर आपस में अंतर्विरोध पद नहीं है। मेरी निजी राय है कि भूमंडलीकरण स्वदेशी होने का सबसे अच्छा तरीका है।''

जाहिर है कि यह भारत का वित्तमंत्री बोल रहा है था और उसकी 'निजी राय' ही भाजपा के नेतृत्व में चलने वाली अर्थनीति थी। उसकी 'निजी राय' और कुछ हो भी कैसे सकती थी? उनका बेटा अंतर्राष्ट्रीय कंसल्टिंग फर्म मैककिंसी में काम करता था और उनकी बहू न्यूयॉर्क स्थित इन्वेस्टमेंट बैंक ओपनहाइमर में काम करती थी। देखते-देखते नये प्रधानमंत्री के कार्यालय, वित्त मंत्रालय, योजना आयोग और आर्थिक मामलों के मंत्रालय पर ऐसे लोग छा गये जिनके लिए स्वदेशी और ग्लोबलाइजेशन में कोई फर्क नहीं था। भूमंडलीकरण समर्थक इस मंडली के प्रमुख नाम थे : उद्योग मंत्री सिकंदर बख्त, विद्युत मंत्री पी. आर. कुमारमंगलम, आवास मंत्री राम जेठमलानी, वाणिज्य मंत्री रामकृष्ण हेगड़े, ब्रजेश मिश्रा, वित्त मंत्री यशवंत सिन्हा, विनिवेश मंत्री अरुण शौरी और योजना आयोग के उपाध्यक्ष जसवंत सिंह।

परिणाम यह निकला कि संसदीय विपक्ष के रूप में भाजपा की स्थिति के मुकाबले सत्ताधारी भाजपा 180 डिग्री घूम गयी। भाजपा जब विपक्ष में थी तो उसने बीमा उद्योग को सरकारी जकड़ से छुड़ाने का समर्थन लेकिन उस क्षेत्र में विदेशी पूंजी के आगमन का विरोध किया था। लेकिन जब वह सरकार में आयी तो 1999 में उसने बीमा क्षेत्र में चालीस फीसदी विदेशी पूंजी की भागीदारी पर संसद में मुहर लगवायी। विपक्ष में रहते समय भाजपा ने पेटेंट कानून बदलने का भी विरोध किया था। लेकिन सत्ता में आने पर उसने पेटेंट बिल पास करवाया जिसके तहत प्रक्रिया को पेटेंट करने के बजाय उत्पाद को पेटेंट करने की इजाजत मिल गयी। विपक्ष में भाजपा ने जनरल एग्रीमेंट ऑन ट्रेड एंड टैरिफ्स द्वारा तैयार किये गये डंकेल ड्राफ्ट में दर्ज विश्व व्यापार संगठन बनाने का प्रावधान का विरोध किया था। लेकिन सत्ता में आने के बाद भाजपा की देखरेख में भारत विश्व व्यापार संगठन में बना रहा और उसकी सरकार ने आयात शुल्क क्रमवार खत्म करने और आयात पर लगी पाबंदियां हटाने के लिए आक्रामक कदम उठाये। विपक्ष में रहते हुए भाजपा इस पक्ष में थी कि प्रत्यक्ष विदेशी

निवेश केवल उच्च प्रोद्योगिकी और अधिसंरचनात्मक क्षेत्रों में ही आना चाहिए। उसने गैर-प्राथमिक क्षेत्रों में इस पूंजी के आने का विरोध किया था लेकिन सत्ता में आने के बाद उसने गैर-प्राथमिकता वाले क्षेत्रों को चिह्नित करने की कोई कोशिश ही नहीं की। शराब और तम्बाकू जैसे अ-प्राथमिक क्षेत्रों समेत प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को चौतरफा इजाजत मिलनी शुरू हो गयी। विपक्ष में रहते समय भाजपा ने स्वदेशी के विचार को आर्थिक राष्ट्रवाद के रूप में परिभाषित किया था। इसका मतलब था भारतीय उद्योग को विदेशी कंपनियों के समकक्ष प्रतियोगिता के लिए समान धरातल उपलब्ध कराना। लेकिन अब स्वदेशी का मतलब हो गया विश्व अर्थव्यवस्था के साथ भारतीय अर्थव्यवस्था को उत्तरोत्तर जोड़ना।

तो क्या संघ-स्वदेशी केवल एक झांसा था? अगर नहीं तो फिर संघ परिवार ने भारतीय जनता पार्टी के नेतृत्व वाली सरकार से नाता क्यों नहीं तोड़ा? स्वदेशी जागरण मंच ने छिट-पुट बयानबाजी के अतिरिक्त इन आर्थिक नीतियों के खिलाफ कोई बड़ी आंदोलनकारी मुहिम क्यों नहीं चलायी? नागराज ने इसे अनर्थकारी विचार करार देकर इसके कारण हो सकने वाले राष्ट्रीय नुकसान की भविष्यवाणी कर दी थी। भारतीय जनता पार्टी की कार्यकारिणी के सदस्य और अर्थशास्त्री जय दुबाशी के एक वक्तव्य ने संघ-स्वदेशी के रणनीति संबंधी आयामों के एक सर्वथा नये पहलू का उद्घाटन यह कह कर किया कि 'बाजपेयी कभी भी स्वदेशी के समर्थक नहीं थे।' हर कोई यह बात जानता था। तब फिर उन्हें प्रधानमंत्री कैसे बनने दिया गया? इसलिए कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरबराहों ने अपने कारणों से उनके नाम पर हरी झंडी दिखायी और उनके इन कारणों का आर्थिक नीतियों से कोई ताल्लुक नहीं था। आइए, देखें संघ-स्वदेशी नामक अनर्थकारी विचार के रूप में भूमंडलीकरण विरोधी ताकतों और मुहिम को कैसे झांसा दिया गया और भाजपा को इस दांव की जरूरत क्यों पड़ी।

भारतीय जनता पार्टी का अतीत भारतीय जनसंघ था। संघ परिवार की इस राजनीतिक शाखा की अर्थनीति निजी पूंजी और उसकी सत्ता अभिव्यक्त करने वाले कॉरपोरेट घरानों के पक्ष में लामबंद होती थी। जनसंघ पब्लिक सेक्टर, लाइसेंस-कोटा राज और कांग्रेस के 'सरकारी समाजवाद' का विरोध करने के लिए जाना जाता था। उसकी अनुदार अर्थनीति का एक पहलू यह भी था कि वह उद्योग और व्यापार में छोटे और मंझोले दर्जे के आर्थिक हितों की पैरोकारी भी करता था। अस्सी के दशक में जब जनता प्रयोग विफल होने के बाद जनसंघ का नया संस्करण भारतीय जनता पार्टी राष्ट्रीय मंच पर उभरा तो संघ के सरबराहों की इजाजत से अर्थनीति संबंधी रुझानों में तब्दीली हुई। भाजपा ने लाइसेंस-कोटा राज का विरोध उग्र कर दिया और आर्थिक उदारीकरण की भाषा बोलने लगी। वह व्यापारियों और उद्योगपतियों का समर्थन अपनी ओर खींचना चाहती थी। लेकिन उस समय भाजपा कुछ परेशान हो गयी जब उसने देखा कि 1991 में कांग्रेस की अल्पमतीय सरकार ने व्यवहार में उसी नीति को अपनाना शुरू कर दिया जिसकी वकालत खुद को कांग्रेस से अलग दिखाने के लिए कर रही थी।

जब दुबाशी ने *द ऑर्गनाइजन* में लिखा : 'कांग्रेस हमारी आर्थिक दावेदारियां ले उड़ी है। अब वह हमारा राजनीतिक आधार छीने ले रही है।...जैसे-जैसे अर्थव्यवस्था के दरवाजे खुलेंगे मध्य वर्ग को कांग्रेस से दूर रखना हमारे लिए उत्तरोत्तर कठिन होता जायेगा। इन नई परिस्थिति में संघ परिवार और भाजपा को एक नई आर्थिक रणनीति सूत्रबद्ध करनी पड़ी। इसी प्रक्रिया में 1992 की शुरुआत में 'स्वदेशी' का फिकरा सामने लाया गया। **स्वदेशी जागरण मंच** का गठन किया गया। एम.जी. बोकाड़े ने उन्हीं दिनों *हिन्दू इकॉनॉमिक्स* शीर्षक से एक पुस्तक लिख डाली जिसका विमोचन सरसंघचालक द्वारा कराया गया। **स्वदेशी का सीधा एक ही मतलब था : आर्थिक आत्मनिर्भरता। यही वह दौर था जब संघ ने कुछ दिनों के लिए विदेशी निवेश से मुक्त ऐसी अर्थव्यवस्था का सपना देखा। विदेशी उपभोक्ता वस्तुओं के आयात को नियंत्रित करने की इच्छा भी इसमें शामिल थी। संघ ने बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा बनायी जाने वाली 326 चीजों की एक सूची जारी की जिसके साथ में हर चीज का एक वैकल्पिक उत्पाद भी था जिसे भारतीय कंपनियों द्वारा बनाया जाता था। 'सांस्कृतिक रूप से अपवित्र' ये विदेशी वस्तुएं संघ की निगाह में पश्चिम की सुखवादी-आनंदवादी-भोगवादी विचारधारा की नुमाइंदगी करती थीं।** संघ ने उपभोक्ताओं से अपील की कि वे हर विदेशी वस्तु का इस्तेमाल त्यागें, और स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग करें। इस सूची को तैयार करने में संघ परिवार के बुद्धिजीवियों और रणनीतिकारों के बीच कई तरह के झंझट हुए। पर आखिरकार स्वदेशी की प्रतीक लिस्ट सार्वजनिक मंच पर पेश कर दी गयी।

लेकिन, क्या भाजपा के भीतर स्वदेशी के इस व्यावहारिक रूप को लागू करने की किसी रणनीति पर अमल की योजना बन रही थी? 1995 में महाराष्ट्र भाजपा के एक उच्चपदस्थ संगठनकर्ता ए. भटकलकर ने इंटरव्यू देते हुए भाजपा के भीतर चल रहे ऊहापोह की जानकारी इस तरह दी, **'हमें पता है कि हम उपभोक्तावादी नहीं खत्म कर सकते। हर कोई एक अच्छी-सी नौकरी, अच्छा-सा घर, एक कार और एक सुंदर बीवी चाहता है। सरकार में आने पर इस हकीकत के कारण हम पर जो दबाव पड़ेगा, उसके बारे में सोच कर मुझे बड़ी चिन्ता होती है। अगर हम सत्ता में आये तो यह सोचकर मैं डर जाता हूं कि हमसे जो उम्मीदें की जायेंगी**

उनका क्या होगा। लोग शिक्षा, अधिसंरचनात्मक सुविधाओं और उत्तम जीवन की मांग करेंगे। जबकि यहां तो गरीबी, अशिक्षा और बीमारी की बहुतायत है। *हम जानते हैं कि भाजपा के सभी संगठनकर्ता संघ की कतारों से आते हैं। भाजपा इन्हीं प्रचारक-संगठन मंत्रियों के दम पर चलती है। भाजपा में आप उपाध्यक्ष हो सकते हैं या कोई और पद मिल सकता है, पर संगठन मंत्री होने के लिए संघ का प्रचारक होना जरूरी है। यह शर्त भाजपा के संविधान में दर्ज है।*

यह विश्लेषण बताता है कि जिस समय संघ भूमंडलीकरण के प्रतिकार में स्वदेशी का नाटक कर रहा था, जिस समय संघ गांधी का नाम लेकर वामपंथी शब्दावली का इस्तेमाल करके असली इरादों की पर्दापोशी कर रहा था, उस समय भाजपा के वास्तविक संगठनकर्ता पार्टी को भूमंडलीकरण के गर्भ से निकली मध्यवर्गीय महत्त्वाकांक्षाओं के अनुकूल बनाने की रणनीति तलाश रहे थे। अटल बिहारी बाजपेयी के नेतृत्व में भूमंडलीकरण और बाजारवाद के पक्के समर्थकों की मंडली ने जिस रणनीति पर अमल किया, वह यही थी। उसका गांधी के उस स्वदेशी से कोई ताल्लुक नहीं था जिसके आधार ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ जंग लड़ी गयी थी। संघ-स्वदेशी न केवल एक अनर्थकारी विचार था क्योंकि उसने गांधीवादी और वामपंथी शब्दावली हड़पी थी, बल्कि वह एक झांसा था जिसमें कुछ समय के लिए कुछ लोग आ गये थे। जाहिर है कि सब लोगों को हर समय बेवकूफ नहीं बनाया जा सकता। इसीलिए आज भाजपा जब कांग्रेस सरकार की अर्थनीतियों की आलोचना करती है तो उस पर कोई ध्यान नहीं देता। स्वदेशी जागरण मंच आज कहीं सोया पड़ा है। देशी-विदेशी पूंजी के अलमबरदार नरेन्द्र मोदी को पूरा संघ परिवार हाथों-हाथ ले रहा है। संघ-स्वदेशी पूरी तरह से अदृश्य हो चुका है। ❑

गतांक से आगे

गांधी की हत्या : क्या सच, क्या झूठ?

❑ चुनीभाई वैद्य

प्रश्न : *पर ऐसा कहा जाता है कि कांग्रेस एवं गांधीजी ने पाकिस्तान का समर्थन किया था। इसके बारे में आपका क्या कहना है?*

उत्तर : हिटलर के साथियों में गोबेल्स नाम का एक दबंग व्यक्ति था। उसका सिद्धांत था, झूठी-से-झूठी बात को भी बार-बार दुहराते रहने से लोग उसे सच मानने लगेंगे। जिन हिन्दू राजनीतिज्ञों को किसी भी प्रकार अपनी राजनैतिक रोटी सेंक लेनी थी, चुनाव जीतने थे, उन्होंने एकदम सातत्य के साथ, व्यवस्थित एवं देशव्यापी स्तर पर इस झूठ को वर्षों तक चलाया। लोग गुमराह हुए और इसका फायदा इन लोगों ने उठाया। यह तो अब जगजाहिर है। नहीं तो देश की आजादी की लड़ाई में जिनका एक प्रतिशत भी योगदान नहीं था वैसे लोग आज राज्यों तथा देश के उच्चासनों पर है, इसका क्या कारण है? लोगों को दी गयी गलत जानकारी।

जहां तक कांग्रेस एवं गांधीजी का संबंध है, अनेक घटनाएं इतिहास के पृष्ठों में अंकित हैं। एक प्रसंग को देखें—लॉर्ड वावेल ने जिन्ना को मुसलमानों के प्रतिनिधि के रूप में तथा गांधीजी को हिन्दुओं के प्रतिनिधि के रूप में वार्ता के लिए बुलाया। गांधीजी उनकी चाल को समझ गये। उन्होंने कहा, जिन्ना को मुस्लिम लीग (सभी मुसलमानों के नहीं) के प्रतिनिधि के रूप में एवं मौलाना अबुल कलाम आजाद को कांग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में बुलाकर बात करें। स्थिति यह हो गयी कि वावेल के बांयें भी मुसलमान और दांयें भी मुसलमान। दो कौम, दो राष्ट्र की बात कांग्रेस ने काफी बाद तक नहीं मानी। और गांधीजी की तो बात ही छोड़ दें। उन्होंने तो यहां तक कहा कि पाकिस्तान की स्थापना मेरी लाश पर चलकर हो, तो भले हो।

परंतु जिन्ना भारत के मुसलमानों को गुमराह करने में कामयाब हो गये। दूसरी ओर बड़ी संख्या में राष्ट्रवादी मुसलमान भी थे। वीरजी अहमद किदवई, भोला आज़मी, डॉ. जाहिर हुसेन साहब तथा प्रो. अब्दुल बारी और इन सबसे ऊपर खान अब्दुल गफ्फार खान थे, जो पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत में पाकिस्तान की रचना का विरोध कर रहे थे। परंतु जिन्ना एवं उनके साथियों के भड़काने से पूरे भारत में अवर्णनीय खूनखराबी एवं तनाव हुआ। दूसरी ओर अंग्रेजों की नीति ही विभाजन करने की थी। लॉड्र वावेल के आदेश से उस समय पाकिस्तान की मांग के संबंध में मुस्लिमों का मतदान करवाया गया। उस समय आज की भांति वयस्क मताधिकार तो था नहीं कुछ पढ़े-लिखे, आयकर चुकाने वाले आदि लोगों को ही मताधिकार प्राप्त था। ९० प्रतिशत मतदान पाकिस्तान की मांग के समर्थन में हुआ। ब्रिटिश सरकार मतदान से होने वाले निर्णयों को मानती थी, इसलिए वह इस निर्णय पर अमल करने के लिए मजबूर थी।

दूसरी ओर यह चिन्ता थी कि राष्ट्रीय स्तर पर यदि कोई समझौता नहीं होता है तो वह अंग्रेजों को सत्ता न छोड़ने का कारण दे देगा। आजादी टलती दिखायी दे रही थी।

इधर माउण्टबेटन ने तो स्पष्ट चेतावनी दे दी थी कि निर्धारित समय में यदि कोई समझौता नहीं होता है तो अंग्रेज जैसी स्थिति है वैसी ही छोड़कर चले जायेंगे। इसका अर्थ यह था कि छोटे-बड़े मिलकर सैकड़ों रजवाड़े आजाद हो जायेंगे। जो क्षेत्र ब्रिटिश शासन के अधीन थे वे भी आजाद हो जायेंगे। मार-काट केवल हिन्दू-मुसलमानों के बीच ही नहीं थी, रजवाड़े भी एक-दूसरे पर एवं ब्रिटिश शासन वाले भाग पर आक्रमण कर सकते थे। इस प्रकार एक भयंकर अराजकता उत्पन्न होने की सम्भावना राष्ट्रीय नेताओं के सामने उपस्थित हो गयी थी। करें क्या? ऐसी परिस्थिति में कांग्रेस अर्धम् त्यजति पण्डिताः के न्याय को मान गयी।

गांधीजी को लगा कि उनके साथ धोखा हुआ है। परंतु आघात से मर्माहत होने के बाद समझ में आया कि 'वे' यानी कौन? एक व्यक्ति की इच्छा का महत्त्व कितना? हतोत्साहित होकर वे 'हे भगवान, अब मुझे उठा लो' की भाषा बोलने लगे। बिलकुल टूट पड़ने की स्थिति में जितना सूझा उतना शान्ति-स्थापना का काम करते रहे। सेवाग्राम जा रही एक बहन ने आश्रमवासियों के लिए सन्देश माँगा तो कहा— "...हमेशा मेरी ओर ही देखते रहना आप के लिए उचित नहीं है। ईश्वर से अब मेरी प्रार्थना है कि मुझे उठा ले।" दूसरे एक मित्र को उन्होंने लिखा, "मैं अब कभी भी सेवाग्राम आ पाऊँगा, यह सम्भव नहीं लगता है।"

गांधीजी के मन को विभाजन का स्वीकार करना कठिन हो रहा था। उन्होंने तो अंत में यहां तक सुझाया कि अंग्रेज जिन्ना को प्रधानमंत्री बनाकर चले जायँ। पर माउण्टबेटन तथा उनकी बातों से प्रभावित कांग्रेस को गांधीजी की बात अब अव्यावहारिक लगने लगी थी।

अंततः कांग्रेस ने गांधीजी को छोड़कर निर्णय लिया—पाकिस्तान बनना अपरिहार्य ही हो तो बने। इसके कारण ही पण्डित नेहरू एवं सरदार पटेल ने माउण्टबेटन वगैरह के साथ चर्चा करके अपनी सम्मति दे देने के बाद ही गांधीजी को इसकी खबर दी। गहरे अपमान की भावना अनुभव करते हुए भी वे एक वीर एवं खेल-भावना वाले मित्र की तरह अपने साथियों के साथ खड़े रहे। वे यह समझ गये थे कि देश में जो परिस्थिति है उसमें कांग्रेस की शक्ति को तोड़ देने से अकल्पनीय हानि होगी क्योंकि उस समय देश में ऐसी शक्ति थी नहीं जो देश को चला सके।

प्रश्न : *तो फिर उन्होंने विभाजन को रोकने के लिए आमरण अनशन क्यों नहीं किया? हिन्दूवादियों का आक्षेप ही यही है कि उन्होंने इस मुद्दे पर आमरण अनशन नहीं किया और 55 करोड़ के मुद्दे पर अनशन क्यों किया?*

उत्तर : गांधीजी ने खुद इसका जवाब दिया है। उनके पास आये एक पत्र के संदर्भ में चर्चा करते हुए उन्होंने कहा था :

"मैं यानी कौन? एक व्यक्ति के रूप में मेरा कोई मूल्य नहीं है। जिन लोगों का प्रतिनिधि बनकर मैं बोलता था, वे लोग मुझे छोड़कर चले गये हैं। उनको मेरी बात जँचती नहीं है। उन्हें विभाजन स्वीकार है। हो सकता है यह उनकी मजबूरी हो। लेकिन मुझे आज भी अपनी पद्धति पर अडिग श्रद्धा है। लेकिन मैं किसके लिए लड़ूँ, जबकि वे सब लोग, जिनका मैं अब तक प्रतिनिधित्व करता था, और जिनके लिए लड़ता था, उन्हें ही विभाजन स्वीकार है? और, जिनका अब मेरे प्रति विश्वास नहीं रहा? पूरा देश मृत्यु और हिंसा का ताण्डव कर रहा! मैत्री, भाईचारा, शांति और प्रेम की अपील से वे खुश नहीं हैं। हिन्दू मुसलमानों को देश से बाहर खदेड़ देना चाहते हैं। जब पूरी परिस्थिति बदल चुकी है, तब मैं किनके समर्थन से अखण्ड और अविभाजित राष्ट्र की लड़ाई लड़ूँ? विभाजन का इनकार करना कोई छोटी-मोटी बात नहीं है।"

भौगोलिक टुकड़े हुए, पर दिल तो जोड़े जा सकते थे। वे खान अब्दुल गफ्फार खान से मिलने तथा जिन्ना ने अल्पसंख्यकों से जो वायदे किये थे, उनका अमल किस प्रकार हो रहा है उसे प्रत्यक्ष देखने के लिए पाकिस्तान जाने की इच्छा अनेक बार व्यक्त कर चुके थे। उन्होंने यहां तक कहा था : "मैं पाकिस्तान को अपना ही देश समझता हूं, इसलिए मुझे वीसा लेने की जरूरत नहीं होगी।" अगर गांधीजी जिन्दा होते तो दुनिया देखती कि जिस प्रकार उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में प्रतिबन्ध का भंग कर नाताल की सीमा में प्रवेश किया था, उसी प्रकार सत्याग्रहपूर्वक पाकिस्तान की सीमा में भी प्रवेश करते। विभाजन को इनकार करने का उनका यह सत्याग्रही तरीका था। उनमें खुद के साथ धोखा होने की भावना जरूर आयी पर जिन साथियों ने उन्हें जिन्दगी भर साथ दिया था, उन साथियों की मजबूरी भी वे समझते थे। जो हुआ उसे उन्होंने सीधे-साधे चुनौती नहीं दी, परंतु उनका मन इसे स्वीकार नहीं कर रहा था, यह तथ्य उपरोक्त बातों से स्पष्ट हो जाता है।

एक दूसरी घटना भी हुई। विभाजन के निर्णय के विरोध में कई लोगों ने लड़ाई के लिए गांधीजी का साथ देने की तैयारी दिखायी थी। कौन थे वे लोग? ये वे लोग थे जो आज तक गांधीजी को गाली देते थे, ये वे लोग थे जो देश की भौगोलिक एकता तो बनाये रखना चाहते थे, पर उन्हें देश की जनता को तो विभाजित करना ही था। ये लोग हिन्दू एवं मुसलमान दो कौम, दो राष्ट्र वगैरह की भाषा बोलते थे। वे मानते थे कि यहां मुसलमानों को दोयम दर्जे का नागरिक बनकर ही रहना चाहिए। हिन्दू धर्म तो अद्वैत की बात करता है, पूरा विश्व एक परिवार—वसुधैव कुटुम्बकम्—की बात करता है, पर उसी के नाम से लड़ने वाले देश की भौगोलिक अखण्डता की बात जरूर करते थे, लेकिन उन्हें दिलों के टुकड़े तो करने ही थे। पुरानी दुश्मनी का बदला जो लेना था! हिन्दू-मुसलमान इन दो कौमों का विभाजन नहीं होता तो इनका धंधा ही बन्द हो जाता! अब, ऐसे लोगों का साथ लेना गांधीजी कैसे स्वीकार कर सकते थे?

(*चुनीभाई वैद्य की पुस्तक 'गांधी की हत्या : क्या सच, क्या झूठ' से प्रकाशन क्रमश जारी रहेगा।* **–कार्य. सं.**)

स्मृति-शेष

चुनीभाई के लिए एक विदाई गीत

❑ कुमार प्रशांत

गालिब लिख गये हैं–

हमको मालूम है जन्नत की हकीकत लेकिन,
दिल के बहलाने को गालिब ये ख्याल अच्छा है।

जगजीत सिंह गा गये हैं–

जाकर जहां से कोई वापस नहीं आता,
वो कौन-सी जगह है अल्लाह जानता है!

इन दोनों बातों को खूब जानते-समझते हुए भी मैं महसूस करता हूं कि चुनी काका तो जन्नत में ही गये होंगे! अगर उन जैसा आदमी स्वर्ग नहीं गया होगा तो स्वर्ग जैसी कोई जगह भगवान के पास है ही नहीं। भगवान यदि जन्नत में रहता है तो अपने खास बंदों को वह अपने साथ, जन्नत में ही तो रखता होगा! चुनी काका भगवान के सच्चे बंदे थे और इसलिए वह बेहद सच्चे व खरे इंसान थे।

लोगों की अपनी विद्वता, अपनी साधना अपनी अध्यात्मिक पहुंच का पक्का अहसास होता है। परंतु चुनी काका इनके प्रति उदासीन थे। उनकी शख्सियत में किसी तृष्णा का अभाव था। वे देश-दुनिया के मामलों में अपनी समझ व अपनी राय रखते भी थे और उन्हें तर्कसम्मत ढंग से एवं मजबूती से पेश भी करते थे। लेकिन उसकी खाई में संबंधों को दफन नहीं करते थे। वे बला के साहसी और आत्मविश्वास से भरपूर थे। उनमें अपनी समझ व मान्यता से जीने का माद्दा था और अपनी बात पर अडिग रहने का गुण भी था। बहुत कमजोर-सी दिखायी देने वाली अपनी काया में वे अथाह शारीरिक क्षमता, बौद्धिक तीक्ष्णता और नैतिक साहस समेटे रहते थे।

मैं उन्हें बहुत जानता, ऐसा कह नहीं सकता, क्योंकि उम्र, उत्साह व उत्कटता में वे मुझसे कहीं आगे खड़े थे। मैंने वे दिन भी नहीं देखे और न उन चुनी भाई को ही देखा जो अपने उद्यम के शिखर पर रहे थे। परंतु विराट चुनी काका एकदम समझ में आते हैं। स्थिति, व्यक्ति और परिस्थिति के बारे में उनकी अपनी पक्की राय होती थी और वे उसे जाहिर करने में भी संकोच नहीं करते थे। लेकिन शिष्टता और शालीनता का दामन कभी छूटता नहीं था। वे अपनी उत्कटता में बहुत दूर तक जाते थे, लेकिन वापसी की सहजता भी उनमें हमेशा बनी रहती थी। न्याय की पुकार वे दूर से सुन लेते थे और उस पुकार के साथ खड़े होने वे दूर से भी चले आते थे। सर्वोदय आंदोलन ने जो कुछ राष्ट्रीय कद के व्यक्ति गढ़े, चुनी काका उनमें एक थे। गुजरात के साथ उनका नाता भले सबसे अधिक था, परंतु उनकी सोच व फिक्र में पूरा देश शामिल रहता था।

मेरे प्रति उनकी प्रीति अकारण थी या कहूं कि इसका कारण था वे खुद ही थे। सर्वोदय आंदोलन में और सार्वजनिक जीवन निर्माण में गुजरात के जिन दो लोगों का सहज स्नेह व विश्वास मिला उनमें कांति भाई शाह और चुनी काका शामिल थे। अब वे दोनों नहीं हैं और इनकी अनुपस्थिति मुझे पीड़ा देती है। चुनी काका से नर्मदा परियोजना की समग्रता के सवाल पर, देवनार गोवध बंदी अभियान की दिशा के सवाल पर एवं धर्मांतरण के संदर्भ के सवाल पर मतभेद हुए। कभी ऐसा भी हुआ कि वे मेरी तरफ से उदासीन बने रहे लेकिन मैंने कभी उस मतभेद को या उदासीनता को ठहरने नहीं दिया। जयप्रकाशजी की मृत्यु के बाद जब मैं और जानकी दोनों ही कुछ बिखर जाने और अकेले पड़ जाने के अहसास से घिरे रहे थे, हमें चुनी काका ने ही गुजरात के लम्बे दौरे पर आमंत्रित किया। उस वक्त हमें अपने साथ जोड़ने की उनकी वह दृष्टि मैं कभी भूल नहीं सकता।

मेरी बातों को, मेरे नजरिये को और मेरी पहल को वे हमेशा सम्मान से व अपनत्व से देखते व समझते थे। उनमें पारदर्शिता भी थी और अपनापन भी। बाबरी मस्जिद के ध्वंस के साथ सारे देश में फैले साम्प्रदायिक दंगे की आग में तब मुम्बई भी जली-झुलसी थी। उस वक्त साम्प्रदायिक शक्तियों के सामने खड़े होने की मेरी एक अलग-सी पहल को सबसे पहले उनका ही समर्थन मिला था। उन्होंने फोन से कहा था, हमारे आंदोलन में अब पहल करने वालों की बहुत कमी होती जा रही है। तुम सावधानी से कदम बढ़ाना लेकिन कदम बढ़ाना जरूर क्योंकि तुम यह कर सकते हो। बात वहां से आगे बढ़ी, तो उसमें से गांधी-विचार के युवकों का एक राष्ट्रीय संगठन बना और उसने उस वक्त के सर्व सेवा संघ के साथ मिलकर, कई अवसरों पर, कई तरह की नई पहल की। राष्ट्रीय युवा संगठन की टोली जब राजघाटे से अयोध्या तक की जन-जागरण यात्रा पर निकली तब मैंने उसे 'अयोध्या मसला : अयोध्या का फैसला' का स्वरूप देकर, ग्रामस्वराज्य से जोड़ने की कोशिश की थी। उस दौरान वे मुझसे बार-बार यात्रा का पूरा हाल फोन पर बताने को कहते रहते थे।

फिर संघ परिवार ने गुजरात को हिन्दुत्व की प्रयोगशाला बनाया और नरेन्द्र मोदी को उसकी अगुवाई सौंपी। उसी दौर में हिन्दुत्व का जहरीला स्वरूप उभारा गया और सन् 2002 में, चुनाव के रास्ते उस जहर पर सारे गुजरात की मुहर लगवाने की चालाकी की गयी। चुनी काका ने उसे खुली चुनौती दी। उन्होंने विनोबा-जयप्रकाश विहीन सर्वोदय जमात की तरफ से यह बड़ी चुनौती उछाली और वह भी तब, जब हमारी जमात में से अधिकांशतः को सांप सूंघ गया था। ऐसे में उनका फोन आया कि मुझे यहां तुम्हारी जरूरत है, जिनते साथियों के साथ और जितने लंबे वक्त के लिए आ सकते हो, आओ। राष्ट्रीय युवा संगठन के साथियों की एक बड़ी टोली बनाकर हम अहमदाबाद पहुंचे थे। उस

दहशत भरे माहौल में वे आत्मविश्वास और सक्रियता की प्रतिमूर्ति बन गये थे।

अभी इसी वर्ष जून महीने में मुझे अहमदाबाद में गुजरात की पीपुल्स युनियन फॉर सिविल लिबर्टीज की वार्षिकी में आमंत्रित किया था। दोपहर में दो घंटे चुनी काका ने मुझे बात करने के लिए बुलाया। वे सर्व सेवा संघ के वर्तमान हालातों से काफी व्यथित थे और उसी बारे में बातें करते रहे। अपनी तरफ से कुछ कह कर मैं उनकी पीड़ा बढ़ाना नहीं चाहता था। मैं इतना ही कह सका कि अब आपको इन बातों की चिन्ता का सारा बोझ हम सबके ऊपर छोड़ देना चाहिए। अक्टूबर में मैं फिर अहमदाबाद पहुंचा। नारायण भाई ने जेपी के जीवन के कुछ प्रसंगों को समेटते हुए एक नाटक लिखा था। यज्ञ प्रकाशन ने उसका विमोचन करने की मेरी पात्रता मानी और मुझे आमंत्रित किया। वे खुद ही मुझसे मिलने गुजरात विद्यापीठ आ पहुंचे और देर तक मुझसे पिछली मुलाकात के बाद की बातें बताते रहे। मैं साफ देख पा रहा था कि मन में बातें भरी पड़ी हैं लेकिन शरीर एकदम खोखला हो चला है। इन दोनों ने मुझसे एक ही प्रश्न किया, सर्वोदय आंदोलन की शिथिलता और इसका भटकाव को कैसे दूर किया जा सकता है? जवाब मेरे पास न तब तथा और न अब है। लेकिन मैंने दोनों से यही कहा कि मेंने अपना मन उस ओर से एकदम हटा लिया है। आज मेरी चिन्ता यह है कि गांधी विचार और कार्यपद्धति को आगे ले जाने और इसे नये प्रयोगी बनाने की दिशा में हम क्या और कैसे कुछ कर सकते हैं। उस दिन मैं चुनी काका को उनकी गाड़ी तक छोड़ने आया तो फीकी-सी हंसी के साथ वे बोले, मैं तो चलता हूं...तुम क्या सोचते हो, यह मुझे बताते रहना!

परंतु अब तो हमें न अपना उद्भव याद रह गया है और न अपना गंतव्य। अहमदाबाद से लौटने से कुछ दिनों बाद ही खबर मिली कि वे बाथरूम में गिर पड़े और कूल्हे की हड्डी टूट गयी है। अपने मन से मैंने कई बार पूछा फोन करूं क्या? उम्र के सौंवे पड़ाव के करीब पहुंच रहे व्यक्ति से यह पूछना कि आपकी हालत कैसी है, मुझे अशिष्टता लगती है। फोन किया लेकिन ठीक से बात हो नहीं सकी। मैं क्या पूछूं यही नहीं समझ पा रहा था और वे इस अटपटी हालत में थे कि क्या कहें? और फिर नारायण भाई के कोमा में चले जाने की खबर मिली। लगता है कि जैसे काल तेजी से वे पन्ने पलटा रहा है जिन पर लिखी इबारतें पढ़-पढ़ कर हम अब तक चला किये हैं। ❑

श्रद्धांजलि : स्व. श्री चुनीभाई वैद्य को

❑ महावीर त्यागी

गुजरात से मेरे पुराने मित्र और गुरु भी श्री कंचनभाई पटेल का फोन आया कि आदरणीय चुनीकाका नहीं रहे। अचानक मिली इस खबर को सुनकर एक झटका सा लगा। मैंने तुरंत भाई श्री महादेव विद्रोही जी को फोन किया। उनकी धर्मपत्नी श्रीमती नीता बहन से बात हुई। उन्होंने बताया कि बिना किसी कष्ट के न किसी से सेवा ली और न ही किसी का एक पैसा भी इलाज में खर्च कराया। उन्होंने तो 'ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया' को सही चरितार्थ किया। वे शतक लगाने से तो चूके परंतु साढ़े सत्तानवें वर्ष की आयु तक पूरी सक्रियता के साथ कार्यों में व्यस्त रहे। वे 'करते हुए ही कर्म इस संसार में शतवर्ष का जीवन हमारा ईष्ट है' को भी सार्थक बना गये।

वे गुजरात प्रांत के महेसाणा जिले के गांव सण्डर में जन्मे थे। उनके पूज्य पिताजी श्रीरामजी भाई वैद्य अपने जमाने के अच्छे प्रतिष्ठित वैद्य थे। इसीलिए चुनीकाका ने अपने नाम के साथ वैद्य लिखना शुरू किया। पढ़ाई तो दसवीं कक्षा तक ही कर पाये परंतु गांधी-जीवन शिक्षा में तो वे अनुभव के आधार और उसी तरह का जीवन जीने के कारण पी.एचडी के समकक्ष थे। शादी तो की नहीं, परंतु उनके कई सारे बेटे-बेटियां थे। उन्होंने अपना पूरा जीवन समाज सेवा में अर्पित कर दिया था। शुरू से ही गांधी जीवन से जुड़े रहे। स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु जेल भी गये। स्वतंत्रता सेनानी तो थे परंतु पेंशन नहीं ली, पूरे त्यागी थे। हां, उनके प्रमाण-पत्र पर बहुतों को स्वतंत्रता सेनानी पेंशन मिली। पूज्य विनोबाजी की 14 वर्षीय पदयात्रा में भाग लेते हुए आप आसाम तक पहुंचे और फिर 12 वर्ष तक वहीं के होकर रह गये। वहां भी पूरी तरह से सेवा कार्यों में जुटे रहे। आपने असमिया और मणिपुरी भाषाओं का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया और गीता प्रवचन का असमिया भाषा में अनुवाद भी किया।

जल-जंगल-जमीन किसके, समाज के कि सरकार के? को मुद्दा बनाकर उन्हें समाज में बताकर पहले गुजरात में बहुत बड़े-बड़े आंदोलन किये। फिर इस मुद्दे को राष्ट्रीय मुद्दा बनाया, इस मुद्दे से प्रभावित होकर हमने हरियाणा प्रदेश सर्वोदय मंडल द्वारा प्रदेश में यह आवाज लगायी, गांव-गांव पहुंचे, पब्लिक मीटिंग, नुक्कड़ सभाएं कीं। इसी कारण मैं उनके अधिक नजदीक आया। वे तीव्रता से इस मुद्दे को पूरे देश में फैला रहे थे। सर्व सेवा संघ ने भी इसे अपने कार्यक्रमों में जोड़ा। हरियाणा प्रदेश सर्वोदय मंडल ने उनके अचानक चले जाने को राष्ट्रक्षति बताया है। मैं अपनी ओर से प्रदेश सर्वोदय मंडल तथा अखिल भारतीय नशाबंदी परिषद की ओर से उन्हें श्रद्धा-सुमन अर्पित करता हूं और परमपिता परमेश्वर से प्रार्थना करता हूं कि दिवंगत सर्वोदय नेता को अपने चरणों में स्थान दें। ❑

चुनी काका : उज्ज्वलता का प्रकाश

❑ प्रकाश न. शाह

चुनी भाई वैद्य ने सारी जिन्दगी संघर्ष किया और उज्वल चादर लेकर हरि के दरबार इस तरह से चले गये, जिससे हमें उनकी मृत्यु का शोक तक न हो। वे शतायु नहीं हो पाये। यद्यपि सत्तानवें वर्ष के उनके सतत् सक्रिय और सारगर्भित जीवन को देखें तो उस हिसाब से उन्होंने पूरे 125 वर्ष का हिसाब हम सबको दे दिया है। चुनी भाई वैद्य 'चुनी काका' के नाम से पहचाने जाते थे। गुजरात में जिन लोगों ने स्वराज की दूसरी लड़ाई की अगुवाई का दायित्व निभाया उनमें सबसे आगे थे। सन् 1975-77 के आपातकाल के वर्षो में सेन्सरशिप से युद्ध में उन्होंने निर्भयता से अपना संपादकीय काम बखूबी निभाया। उसी दौरान सर्वप्रथम गुजरात ने और बाद में देश ने उनका नाम जाना। आपातकाल की समाप्ति के बाद किसी निमित्त से मेरा बड़ौदा जाना हुआ। तभी शीर्षस्थ पत्रकार कुलदीप नायर पत्रकारिता की जिज्ञासावश और खास तौर पर 'भूमिपुत्र' का ठिकाना ढूंढते-ढूंढते खुद वहां पहुंच गये थे। एकदम सादा अपूर्ण सुविधाओं के बीच फाकामस्ती माहौल जैसा वह ठिकाना देश के ठाटबाट वाले अखबार भवनों की जमात से तब भी बिलकुल अलग था और आज भी अलग है।

आपातकाल के बाद प्रेस कमीशन ने जो कैफियतें लेकर खास जांच रिपोर्ट तैयार की थी तो स्वाभाविक ही उसने चुनी काका को भी बुलाया गया था। सरकारी तौर तरीकों के मुताबिक कैफियत आने जाने को लेकर चुनी काका के नाम से चेक आया। उसी समय काका को भी याद आया कि उनके अपने नाम से कोई बैंक खाता भी नहीं है। आपातकाल और भूमिपुत्र के संदर्भ में काका का नाम विशेष रूप से लिया जाता है, लेकिन उसके पहले का और उसके बाद का उनका जीवन स्वराज की लड़ाई के लिए और स्वराज की दूसरी लड़ाई के लिए सतत सक्रियता से समर्पित रहा है। हाल ही के वर्षों में गुजरात से उनका जो परिचय है वह जल, जमीन और जंगल को लेकर जनता के संघर्ष का है। उनका जोर खास तौर पर 'गांव की जमीन गांव की...' के सूत्र के आसपास चले संघर्षों के कारण है। वैश्वीकरण एवं कारपोरेटीकरण के माहौल में खेत की जमीन चली जाने का और प्राकृतिक संसाधनों का शोषण का जो राजनीतिकरण और आर्थिक ढांचा बना चला है उसके सामने गुजरात की आज तक सबसे बड़ी लड़ाई महुवा की (कनुभाई कलसरिया की) है। इसमें सबसे बड़ी निष्पक्ष आवाज चुनीकाका की रही है।

दूसरे स्वराज के संदर्भ में एक अन्य मुद्दे को भी खास ध्यान में लेना चाहिए। हाल के दशक जो एक ओर से वैश्वीकरण के भयस्थान के हैं तो दूसरी ओर विषाक्त और विभाजक साम्प्रदायिकता के भी हैं। आपातकाल के विरोध में नागरिक समाज की जो आवाज उठी थी, वह कार्पोरेटीकरण और कौमवाद के मामले में कुछ मंद तो कुछ बिखरी हुई या भटकाव में पड़ी मालूम होती है। इस परिस्थिति में जो थोड़ी सी असंदिग्ध आवाज उठी उसमें एक चुनीकाका की थी। उन्हें कीर्ति देने वाले भूमिपुत्र के संपादन से पहले चुनीकाका ने दस-बारह साल असम को दिये थे। विनोबाजी की भूदान यात्रा जब असम जाने वाली थी, उसके पहले असमिया भाषा में विचार-प्रचार के लिए गुजरात के चुनीभाई प्रथम जीवनदानी के रूप में गये। अनजान लोग और इतनी ही अनजान भाषा के साथ उन्होंने अपना दायित्व निभाया और एक मानक स्थापित किया। चीन के आक्रमण के बाद उन्होंने असम छोड़ने का तय किया था लेकिन अपने आत्मीय दायित्व से असम छोड़ने का निर्णय मुल्तवी रखा और वहां लंबे समय तक रहने का निश्चय किया।

असम की प्रजा के सुख दुख में उनकी ऐसी सहभागिता थी। दशकों बाद आज असम में अपने कार्य के दरमियान जिनके साथ पल्ला पड़ा था ऐसे ही एंग्री यंगमैन गुजरात में उनके सामने खड़ा है। उनके समक्ष एक चुनौतीपूर्ण घटना सन् 2002 में घटी जब नर्मदा बचाओ आंदोलन की मेधा पाटकर पर हमला हुआ तो उनको बचाने के लिए चुनीकाका ने किसी बात की परवाह नहीं की। जबकि नर्मदा बांध के मुद्दे पर उनकी उग्रता हमारे सामने है। लेकिन चुनीकाका गांधी द्वारा आकार दिये हुए सार्वजनिक जीवन के ही एक साक्षी हैं। अंतिम दर्शन के दौरान उनके चेहरे पर जो शांति देखने को मिली, उससे समझ में आता था कि वे सहज क्रम से, सहज भाव से गये हैं। नौ दिसंबर (अंतर्राष्ट्रीय मानव अधिकार दिवस की पूर्व संध्या पर) को उनसे मिलना हुआ था। अंतिम दिनों में एक साथी ने उनसे संदेश के लिए पूछा तब कांपते हुए हाथों से आयी हुई दो तीन पंक्तियों में उन्होंने 'मुक्ति' की और 'ईश्वर' के पास जाने की बात कही थी।

चुनीभाई वैद्य और नारायण देसाई गुजरात में गांधी, विनोबा, जयप्रकाश घराने के दो स्तम्भ रहे हैं। स्वास्थ्य के नाजुक दौर में से गुजर रहे नारायण देसाई ने 24 दिसंबर को जीवन के नौ दशक पूरे कर लिये। मैं जब यह लिख रहा हूं तब नचिकेता देसाई के फेसबुक का हवाला देकर एक मित्र ने नारायण देसाई के स्वास्थ्य सुधार का आंदोल्लास भरा समाचार दिया है। संघर्ष और रचना का आयुष्य परास्पर्ध और अनुबंधुत्व की आज गांधी भूमिका इन दो व्यक्तित्वो में अपनी-अपनी रीति से प्रकट हो रही है। सहृदय शिक्षक नारायण देसाई ने पिछले वर्षों में गांधी सुमिरन को कथा मार्ग से खुद का मोक्ष माना है। जैसे चुनीकाका के स्मृति प्रकाश वैसे नारायण देसाई के कथा संगम में गुजरात को अपने आपको खोजना, टटोलना और झकझोरना होगा। चुनौती कहो तो चुनौती, परंतु इस समय जो पल हमारे सामने है उसको हम पकड़ सकें तो चुनीकाका का जाना और नारायणभाई का हमारे साथ होना दोनों सार्थक बन पड़ेंगे। *(सप्रेस)*

गांवों को न सहेजने का खामियाजा

❑ भारत डोगरा

आजादी के बाद गांवों में हुए विविधतापूर्ण बदलाव को समझने के दृष्टिकोण अलग-अलग हो सकते हैं। गांवों से जुड़े हुए किसी भी व्यक्ति को इस बात से इनकार नहीं होगा कि गरीबी अभी तक बड़े पैमाने पर मौजूद है। ब्रिटिश साम्राज्य के दिनों की सबसे बड़ी दुखभरी दास्तान उन भयानक अकालों की है, जिसमें समय-समय पर भारतीय गांवों में लाखों की संख्या में लोग मारे जाते थे। स्वतंत्रता के बाद की यह एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है कि इन अकालों से हमने सफलतापूर्वक छुटकारा पाया। लेकिन गांवों से भूख, कुपोषण और गरीबी को सदा के लिए दूर कर देने के लक्ष्य में अभी हमें सफलता नहीं मिली है। एक अन्य मुख्य विफलता है टिकाऊ और स्थायी विकास की संभावनाओं का कम होना। तेजी से वन-विनाश हुआ व अंधाधुंध जल-दोहन के कारण जल-स्तर नीचे चला गया। रासायनिक खाद के अत्यधिक और असावधान उपयोग के कारण कृषि-भूमि का उपजाऊपन कम हुआ। इससे पर्यावरण का संकट विकट हुआ और अगली पीढ़ी के लिए समस्याएं बढ़ीं। वैकल्पिक वनीकरण भी वन विनाश की क्षति पूर्ति नहीं कर पाया।

जल संसाधन की बड़ी-बड़ी परियोजनाएं बनीं, विशालकाय बांध बनाए गए, पर गांव स्तर पर जल के संरक्षण और संग्रहण को पर्याप्त महत्त्व नहीं दिया गया। फसल-चक्र में, फसलों की किस्मों में तेजी से रसायनों तथा मशीनों की मदद से कई ऐसे बदलाव किए गए जिसमें अल्पकाल में उत्पादकता बढ़ी पर आगे के लिए जो मिट्टी का उपजाऊपन कम होने का संकट उत्पन्न हुआ, उस पर समुचित ध्यान नहीं दिया गया। गरीबी की समस्या बनी रहने और पर्यावरण का संकट विकट होने और उसके कारणों को समझने के लिए गांवों में परंपरा और बदलाव के बीच हो रहे टकराव पर ध्यान देना जरूरी है। आजादी के समय हमारे गांवों की जो दयनीय स्थिति थी उसे 1940 के दशक में पड़े बंगाल के अकाल ने बहुत क्रूरता से स्पष्ट कर दिया था। इस अकाल में लगभग तीस लाख लोग मारे गये थे।

ब्रिटिश साम्राज्य का मुख्य उद्देश्य था हमारे गांवों में अपना अधिपत्य बनाए रखना और आर्थिक संसाधनों को निचोड़ना तथा वहां से अधिक से अधिक आर्थिक संसाधन अपने साम्राज्य के लिए एकत्र करना। साथ ही उन्होंने जुलाहों जैसे अनेक दस्तकारों की

उपेक्षा ही नहीं की, बल्कि इनके विनाश की नीतियां भी अपनायीं! ताकि ब्रिटेन के मशीनीकृत तरीकों से तैयार वस्त्र और अन्य औद्योगिक वस्तुओं की बिक्री भारत में बढ़ सके। इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए उन्होंने भारतीय समाज में पहले से चली आ रही विषमताओं को और गहरा किया। भूमि और अन्य तरह के संसाधनों से वंचित कर्ज में डूबे हुए और कई बार तो बंधक मजदूर की तरह काम करते हुए सबसे गरीब परिवारों को हमें अपनी पहली प्राथमिकता बनाना चाहिए था। यहीं हमसे भूल हो गई। हम सबसे निर्धन परिवार तक नहीं पहुंच सके। यह सच है कि जमींदारी समाप्त करने का कानून जोर-शोर से बना, कुछ हद तक सामंती शोषण पर चोट भी की गई, पर विषमता की व्यवस्था में जो व्यापक बदलाव आना चाहिए था, वह नहीं आ सका।

मध्य वर्ग के किसानों को उनके स्वतंत्र विकास की संभावनाएं बढ़ीं जिसका, उनमें से अनेक ने उचित लाभ भी उठाया। किंतु सबसे गरीब भूमिहीन या लगभग भूमिहीन वर्ग की स्थिति में विशेष सुधार नहीं हुआ। कुछ क्षेत्रों में तो आदिवासियों की भूमि बड़े पैमाने पर उनसे छिन गई। भूमि-सुधार के जो कानून बनाए गए उनको भी ठीक से लागू नहीं किया गया। दूसरी ओर जिन क्षेत्रों में हम अपनी समृद्ध परंपरा से वास्तव में कुछ सीख सकते थे वहां हमने इसकी उपेक्षा की। उदाहरण के लिए, कृषि तथा सिंचाई की तकनीकी में स्थानीय भौगोलिक परिस्थितियों और जलवायु के अनुकूल कई शताब्दियों से किसानों तथा अन्य ग्रामवासियों ने धीरे-धीरे जो प्रगति की थी, जिसमें कितनी ही पीढियों का ज्ञान संग्रहित था, उसकी ओर हमने पर्याप्त ध्यान नहीं दिया। हमने गांवों के आर्थिक पिछड़ेपन को देखा और यहां की हर बात को पिछड़ी हुई मान लिया। यह हमारी बहुत बड़ी भूल थी। गांव के पिछड़ेपन और गरीबी का सबसे बड़ा कारण शोषण और विषमता की व्यवस्था थी। यदि इसे हम दूर करने पर ध्यान केंद्रित करते तो हमें साथ ही साथ गांवों के किसानों-मजदूरों-दस्तकारों, विशेषकर बुजुर्ग लोगों के पास संग्रहित बहुत सी जानकारी और ज्ञान को समझने का अवसर भी मिलता।

उन्नीसवीं शताब्दी में जैसे-जैसे ब्रिटिश शासन भारत के अधिकांश क्षेत्रों में फैलता गया वैसे-वैसे गांवों की आर्थिक तबाही बढ़ती गयी। इसके बावजूद उस समय के अनेक ब्रिटिश और अन्य यूरोपीय कृषि तथा सिंचाई विशेषज्ञों ने भी इस बात को नोट किया था कि जहां तक कृषि और सिंचाई की परंपरागत तकनीक का सवाल है वह बहुत उत्कृष्ट कोटि की है और भारतीय किसानों के तौर-तरीके बहुत समृद्ध हैं। हमारे गांवों की परंपरागत तकनीकी में स्थानीय समस्याओं के व्यावहारिक समाधान की कुशलता थी। उदाहरण के लिए हमारे देश में वर्षा मुख्य

रूप से मानसून के दो-तीन महीनों में केंद्रित है। अतः जल संरक्षण तथा संग्रहण की विशेष आवश्यकता है। ब्रिटेन में वर्ष भर कुछ न कुछ वर्षा होती रहती है और वह भी धीरे-धीरे। अतः वहां जल संग्रहण तथा संरक्षण की इतनी आवश्यकता नहीं है। वहां की स्थिति के आधार पर काम करने वाले विशेषज्ञों ने भारत के परंपरागत जल संग्रहण और संरक्षण के तौर-तरीकों की उपेक्षा की बात तो समझी जा सकती है पर आजादी के बाद हम स्वयं भी यही करते रहे यह विशेष दुख की बात है।

संक्षेप में कहें तो भारतीय गांवों के संदर्भ में परंपरा के दो पक्ष हैं। एक पक्ष विषमता, अन्याय अंध-विश्वास, छुआछूत आदि से संबंधित है जिसका जमकर विरोध होना चाहिए। पर परंपरा का एक दूसरा पक्ष भी है जो कई पीढ़ियों और शताब्दियों से किसानों, मजदूरों, दस्तकारों, वैद्यों, तालाब बनाने वालों, जल-संग्रहण की व्यवस्था से जुड़े विशेष समुदायों, पशु-पालकों द्वारा संग्रहित ज्ञान से संबंधित है। यह ज्ञान प्रायः अलिखित रूप से ही एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचता रहा है। इस परंपरा द्वारा ही बहुत सी जैवविविधता बचाई गई है व बेहद विकट परिस्थितियों में जल संकट का सामना करने के उपाय खोजे गए हैं। अतः इन परंपराओं को बचाए रखना बहुत जरूरी है। परंपरा के जिन पक्षों से हमें सीखना था, उसकी हम आधुनिक आकर्षक तकनीक के प्रचार-प्रसार में उपेक्षा कर बैठे। अरबों रुपए के बड़े-बड़े बांध बना दिए लेकिन पहले से चले आ रहे तालाबों की ठीक मरम्मत तक हम नहीं कर सके। इसी के सहकार एवं संरक्षण की विधियों के प्रति तो सामूहिक जिम्मेदारी की भावना थी उसका भी ह्रास हुआ।

अभी भी बहुत देर नहीं हुई है और समय रहते हम अपनी गलतियों को सुधार सकें तो गांवों की स्थिति में सुधार व गरीबी में कमी संभव है। इस हेतु गरीबों को उनका उचित हक दिलवाने के साथ ही साथ हमारी पारंपरिक जल एवं सिंचाई व्यवस्था को पुनर्जीवित करना होगा तथा जैवविविधता को बचाने के लिए वन विनाश को स्थायी रूप से प्रतिबंधित करना होगा।

विकास की आड़ में संसाधनों की लूट

❑ जयंत वर्मा

भारत के संविधान के भाग चार में शासन के मूलभूत तत्त्व लिपिबद्ध हैं और राज्य को यह निर्देश है कि विधि बनाकर इन तत्त्वों को लागू किया जाय। अनुच्छेद-38(2) में स्पष्ट लिखा है कि विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले और विभिन्न व्यवसायों में लगे हुए लोगों के समूहों के बीच प्रतिष्ठा, सुविधाओं और अवसरों की असमानता समाप्त करना राज्य का कर्तव्य है।

वर्ष 1950 में भारत का संविधान लागू होने के समय देश की लगभग 80 फीसदी आबादी कृषि और सहायक व्यवसायों में संलग्न थी। इनकी आजीविका का मुख्य स्रोत प्राकृतिक संसाधन अर्थात् जल, जंगल और जमीन थे। उपनिवेश काल में ब्रिटिश हुकूमत ने जल, जंगल और जमीन को मनमाने तौर पर हड़प लेने के लिए असंख्य कानून बनाये। सन् 1894 का भूमि अधिग्रहण कानून, सन् 1927 का भारतीय वन कानून आदि ऐसे ही कुछ कानून हैं।

ब्रिटिश हुकूमत से समझौते के तहत जब भारतवासियों को सत्ता का हस्तांतरण हुआ तो उपनिवेशकालीन सभी कानूनों को कायम रखा गया। संविधान के सातवें संशोधन में तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद को यह अधिकार दिया गया था कि वे एक वर्ष की अवधि में ऐसे सभी कानूनों की समीक्षा करेंगे, जो ब्रिटिश संसद द्वारा पारित किये गये थे।

यदि वे संविधान की प्रस्तावना, भाग-तीन और चार के प्रतिकूल पाये जाते हैं तो उन्हें संशोधित या निरस्त करने का भी उन्हें पूर्ण अधिकार था। दुर्भाग्य से तत्कालीन शासक वर्ग ने इस अवसर का लाभ नहीं उठाया। इसकी वजह शायद यह थी कि उन्हें ब्रिटिशकालीन सभी कानून अपने वर्गहित में दिखे होंगे। इसके बाद यह मान लिया गया कि उपनिवेशकालीन सभी कानून संविधान सम्मत हैं।

संविधान में विकास को कहीं भी परिभाषित नहीं किया गया है। वर्ष 1990 के बाद भूमंडलीकरण, उदारीकरण और निजीकरण की नीतियां अपनाई गयीं। सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि को विकास का पैमाना मान लिया गया। इसका अर्थ यह था कि जल, जंगल और जमीन पर आश्रित लोगों से

ये संसाधन छीन कर कंपनियों के हवाले कर दिये जायं ताकि वे उनका भरपूर दोहन कर देश को विकसित बना दें।

योजना आयोग का अनुमान है कि आजादी के बाद निजी और सार्वजनिक क्षेत्र की विभिन्न परियोजनाओं के लिए भूमि के अधिग्रहण से लगभग 6 करोड़ लोग विस्थापित हो चुके हैं।

सर्वाधिक रोजगार देने वाले कृषि क्षेत्र में सार्वजनिक निवेश घटा देने और खाद्यान्न के समर्थन मूल्य में निरंतर गिरावट के कारण खेती घाटे का सौदा बन गयी। राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो के अनुसार पिछले 17 वर्षों में 3 लाख से अधिक किसान आत्महत्या कर चुके हैं।

एक ताजा अध्ययन के अनुसार प्रतिदिन दो हजार किसान खेती छोड़ रहे हैं। लोगों का गांव से शहर की ओर पलायन बढ़ता जा रहा है। संसद और विधानसभाओं में इस समस्या को लेकर चुप्पी दिखती है।

सभी राजनीतिक दल यह मान चुके हैं कि खेती-किसानी का काम श्रम केन्द्रित न होकर पूंजी केन्द्रित बनाया जाय। इसके लिए छोटे और सीमांत किसानों से खेती की भूमि हड़प कर कारपोरेट घरानों को सौंपने की ओर तेजी से कदम उठाये जा रहे हैं।

एन.डी.ए. की सरकार ने वर्ष 2000 में योजना आयोग का दृष्टिपत्र तैयार किया था, जिसके अनुसार वर्ष 2020 में भारत की सकल घरेलू उत्पाद में कृषि क्षेत्र का योगदान घटाकर मात्रा 6 प्रतिशत कर देने की योजना है। यू. पी. ए. की सरकार और उसमें शामिल सभी राजनीतिक दलों का भी यही दृष्टिपत्र है।

संविधान के अनुच्छेद-39(क) में राज्य को निर्देश है कि वह अपनी नीति का इस प्रकार संचालन करेगा कि पुरुष और स्त्री सभी नागरिकों को समान रूप से जीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार हो। अनुच्छेद-39(ख) में राज्य को ऐसे कानून बनाने का निर्देश है कि समुदाय के भौतिक संसाधनों का स्वामित्व और नियंत्रण इस प्रकार बँटे ताकि सामूहिक हित सर्वोत्तम रूप से सध सकें।

यह भी सुनिश्चित करने का निर्देश है कि धन और उत्पादन साधनों का सर्वसाधारण के लिए अहितकारी संकेन्द्रण न हो। आर्थिक भूमंडलीकरण की नीतियों के फलस्वरूप उपरोक्त सभी निर्देशों की धज्जियां उड़ाने वाले परिणाम सामने आ रहे हैं।

संविधान के भाग-चार के उल्लंघन में चलायी जा रही आर्थिक नीतियां प्रमाणित करती हैं कि संविधान के प्रति आस्था की शपथ लेकर विधायिका और कार्यपालिका में पदस्थ पदाधिकारी जनता के साथ विश्वासघात कर रहे हैं।

विकास के अधिकार के घोषणापत्र (1986) में विकास के तीन मानक बताये गये हैं। प्राकृतिक संसाधनों पर नियंत्रण, स्वनिर्धारण और विकास के प्रतिफल में भागीदारी। भूमि अधिग्रहण संशोधन अधिनियम में इन तीनों मानकों का समावेश नहीं किया जाना विकास पीड़ितों के मानवाधिकारों का खुला उल्लंघन है।

जुलाई, 2013 में ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा जारी राष्ट्रीय भूमि सुधार नीति के प्रारूप में यह खुलासा किया गया है कि ग्रामीण भारत में खेती की जमीन खेतिहर समाज के नियंत्रण से निकलती जा रही है। भारत के एक तिहाई परिवार भूमिहीन हैं।

इतने ही परिवार भूमिहीनता के करीब पहुंच चुके हैं। अगले 20 प्रतिशत परिवारों के पास 1 हेक्टेयर से भी कम भूमि है। इस प्रकार भारत की 60 फीसदी आबादी का देश की कुल भूमि के 5 प्रतिशत पर अधिकार है जबकि 10 प्रतिशत जनसंख्या का 55 फीसदी जमीन पर नियंत्रण है।

यह भी स्पष्ट हो चुका है कि आर्थिक वृद्धि दर की टपकन का लाभ निर्धनों तक नहीं पुंच रहा है। समाज में गरीबी और अमीरी के बीच खाई तेज गति से बढ़ रही है। ऐसी दशा में आर्थिक वृद्धि दर विकास का पैमाना नहीं बल्कि लूट का हथियार बन गया है। विकास की परियोजनाओं से उजड़ने वालों का यह सवाल अब बहुत महत्त्वपूर्ण हो गया है कि ''किसकी कीमत पर किसका विकास...।''

यह भी जानते हैं कि पांचवीं अनुसूची वाले जनजातीय क्षेत्रों में प्राकृतिक संसाधन भरपूर हैं। वहां के खनिज, जल, वन और भूमि पर कारपोरेट घरानों की नजर है।

येन केन प्रकारेण वे इसे मिट्टी मोल हासिल करना चाहते हैं। पंचायतों के अनुसूचित क्षेत्रों पर विस्तार के कानून 'पेसा' में ग्रामसभा की सहमति के बिना लोगों की बेदखली और भूमि का अधिग्रहण प्रतिबंधित है। समता और नियमगिरी के प्रकरणों में उच्चतम न्यायालय ने पांचवीं अनुसूची वाले क्षेत्रों में कारपोरेट घरानों को प्राकृतिक संसाधन सौंपने के सरकारी फैसलों को असंवैधानिक घोषित किया है।

इसके बावजूद शासक वर्ग द्वारा जगह-जगह एम. ओ. यू. के माध्यम से जनजातीय क्षेत्रों के संसाधन कारपोरेट घरानों को सौंपने का सिलसिला जारी है।

पांचवीं अनुसूची के क्षेत्रों में नगरीय निकायों के लिए स्वशासन का कानून बनाने, भूरिया समिति की सिफारिश पर अमल नहीं करके सरकार जनजातीय क्षेत्रों में प्राकृतिक संसाधनों की लूट का दरवाजा खुला रखना चाहती है।

सरकार द्वारा संविधान के प्रावधानों की अवहेलना से ही जनजातीय समाज में रोश पनप रहा है। इस संबंध में राष्ट्रपति और गृहमंत्री ने भी अपने संबोधनों में राज्य सरकारों को आगाह किया है। अनेक सरकारी रिपोर्ट भी स्पष्ट रूप से दर्शाती है कि लूट को विकास बताने वाली राज्य सरकारें प्राकृतिक संसाधन कारपोरेट घरानों को बेच देने पर आमादा हैं। ❑

स्वदेशी शिक्षा सच्ची शिक्षा

❑ किशनगिरि गोस्वामी

अंग्रेज हुकूमत ने सन् 1935 में लॉड मैकाले की जिस शिक्षा-पद्धति को भारत में लागू किया था, उसमें भारतवासियों को सदा के लिए वैचारिक रूप से गुलाम बनाने की भावना तो थी ही, उनका अंतिम एवं महत्त्वपूर्ण लक्ष्य भारत की जनता में ऐसी सुख-सुविधाओं की होड़ जगाना था, जिससे ब्रिटिश माल की खपत अधिकाधिक हो और नयी-नयी चीजों का बाजार तैयार हो सके। विदेशी भाषा (अंग्रेजी) के माध्यम से *''उपभोक्ता संस्कृति''* की यह नींव थी। अंग्रेज यह जानते थे कि भारतीय भाषाएं जिस संस्कृति में पली-बढ़ी हैं, वे तेन त्यक्तेन भुजिं था (त्याग कर भोगने) की संस्कृति है। इसलिए इस देश पर उपभोक्तावाद लादने के लिए उसी परिवेश में पली भाषा (अंग्रेजी) ही अधिक कारगर होगी। इसी कारण महात्मा गांधी का स्वाधीनता आंदोलन अंग्रेजी शासन के साथ-साथ इस उपभोक्तावादी संस्कृति के विरुद्ध भी था, क्योंकि गांधीजी पश्चिम की पैशाचिक सस्कृति Life means have more (और ज्यादा) के बजाय पूरब की Just enough (बस इतना पर्याप्त) के पक्षधर थे। **महात्मा गांधी ने भारतीयों में स्वदेशी भावना जागृत करने का भरपूर प्रयास किया था परंतु आजादी के बाद यह स्वदेशी की भावना दिन-ब-दिन ढीली पड़ती गयी। मैकाले की इस अव्यवहारिक शिक्षा ने स्वदेशी (विशेष कर स्थानीय) मानसिकता समाप्त कर इसे बाजार के चलन के अधीन कर दिया।**

आज 71 साल की वय में, जब मैं पीछे मुड़कर देखता हूं, तो यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि यह शिक्षा एक ग्रामीण बालक को किस तरह उसके खान-पान, रहन-सहन एवं परिवेश को, जड़ों से विलग करने का काम करती है। इस (अ) शिक्षा ने बचपन में ही न जाने कब, शनैः शनैः मुझमें यह भाव भर दिया कि खान-पान की प्रकृति प्रदत्त समस्त सहज-सुलभ स्थानीय वस्तुएं हीन एवं खराब हैं। इनका उपयोग तो बेहद गरीब, अनपढ़, गंवार एवं असभ्य लोग ही करते हैं। अतः महज 18 साल की कच्ची उम्र में मैट्रिक कर अपने गांव रामगढ़-जैसलमेर (राजस्थान) में शिक्षक बन जाने पर अपने घर-परिवार में क्षेत्रानुसार (मारवाड़) प्रकृति-प्रदत्त—केर, सांगरी (राजस्थान के कल्पवृक्ष खेजड़ी का फल), ग्वारफली, कुंभटिया, काचरा-मतीरा, हेलारिया इत्यादि न जाने कितनी स्थानीय वस्तुओं का उपभोग वर्जित कर दिया। इतना ही नहीं, बल्कि अपने माता-पिता द्वारा बड़े चाव से खाया जाने वाला दलिया (स्थानीय बोली में गाढ) पर भी नाक-भौं सिकोड़ने लगा, क्योंकि इन स्थानीय चीजों को घटिया मानने की हीनभावना मुझमें इस अधकचरी शिक्षा ने कूट-कूट कर भर दी थी। बाहर से आने वाले मेहमानों को भी इन वस्तुओं को परोसना, अपना अपमान समझता था, जबकि वे इन्हीं वस्तुओं को खाने की पुरजोर मांग करते थे। यही हाल मेरे रहन-सहन एवं पोशाक का भी रहा।

वैचारिक रूप से परिपक्व होने एवं गांधी-सर्वोदय साहित्य अध्ययन के पश्चात् ही मैं यह समझ पाया कि कुदरत ने हर क्षेत्र में मनुष्य ही नहीं बल्कि जानवरों तक के लिए भी स्थानीय परिस्थितियों एवं वातावरण के अनुसार माकूल व्यवस्थाएं कर रखी हैं। ये स्थानीय वस्तुएं उस क्षेत्र के लोगों के लिए बाहरी वस्तुओं की बनिस्बत ज्यादा मुफीद एवं स्वाथ्यवर्धक हैं, किन्तु इस शिक्षा ने स्थानीय जल-जंगल-जमीन से हमारा जुड़ाव समाप्त कर न सिर्फ भारत की ग्रामीण व्यवस्था को धूलि-धूसरित किया है बल्कि हमसे जल, वस्त्र, यातायात, स्वास्थ्य एवं शिक्षा स्वालंबन को छीनकर हमें परावलम्बी बना दिया है। अब मैं अपने खान-पान, रहन-सहन, वेशभूषा में परिवर्तन कर पाश्चाताप कर रहा हूं। मुझ जैसे न जाने कितने भारतीय अंग्रेजों की इस चाल में फंसे होंगे।

वर्तमान शिक्षा हमें यह नहीं सिखाती कि प्रकृति प्रदत्त ये स्थानीय वस्तुएं बेहद पौष्टिकता के साथ-साथ कई असाध्य रोगों को ठीक करने की क्षमता एवं गुणवत्ता रखती हैं। यह शिक्षा हमें यह नहीं सिखाती कि मात्र पश्चिमी मारवाड़ (राजस्थान) में उत्पन्न होने वाली *''सेवण''* घास, विश्व की सर्वाधिक पौष्टिक घासों में से एक है। इसीलिए रूस के कृषि वैज्ञानिक यहां से बीज ले जाकर अपने देश में इसे उगाने हेतु प्रयासरत हैं। यह शिक्षा हमें यह नहीं सिखाती कि इस क्षेत्र की विचित्र वनस्पतियां अनेक असरकारी दवाईयां बनाने के काम आती हैं। यह शिक्षा हमें यह नहीं सिखाती कि गाय के घी का पीलापन (गोरोचन) अन्य घी से अधिक गुणकारी होता है। यह शिक्षा हमें यह नहीं सिखाती कि मवेशी पालन का काम खेती में सहयोग के साथ-साथ जीवनयापन का एक बहुत बड़ा जरिया है, आदि-आदि। यहां तो सब लोग देश के मेरुदण्ड गांव को उजाड़ कर महानगर बनाने की अंधी दौड़ में ताबड़तोड़ लगे हुए हैं। यह शिक्षा भारत को इण्डिया बनाने हेतु कृत संकल्पित हैं। अतः इसे आज और अभी बदलने की महती आवश्यकता है। यह शिक्षा विदेशी नकल कर फैक्ट्रियों में माल की तरह, स्कूलों से बच्चों को, मनुष्य के स्थान पर

उत्पाद बना रही है। मात्र पेट भरना सीखने के लिए जीवन के अमूल्य 18 वर्ष लगाने पड़ते हैं। पहले मां-बाप से उनके बच्चों को छीनकर लाओ, फिर उनकी जमा-पूंजी उजाड़ कर 10वीं-12वीं करवाओ, ताकि वह वापिस अपना पुश्तैनी धंधा न कर सके तथा बेरोजगार बनकर सड़क नापे या असंतुष्ट रहकर नक्सली बने।

मानव विकास के विविध कारकों में ''सच्ची शिक्षा'' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सच्ची शिक्षा उस आदमी ने पायी है, जिसके शरीर को ऐसी आदत डाली गयी है कि वह उसके वश में रहता है। जिसका शरीर आसानी से एवं चैन से सौंपा हुआ कार्य करता है। उस आदमी ने सच्ची शिक्षा पायी है, जिसकी बुद्धि, शुद्ध-शांत एवं न्यायदर्शी है। जिसका मन कुदरती कानूनों से भरा है, जिसकी इन्द्रियां उसके वश में हैं, जिसके मन की भावनाएं शुद्ध हैं। जिसे नीच कामों से नफरत है और जो दूसरों को अपने जैसा ही मानता है। ऐसा व्यक्ति ही सच्चा शिक्षित और विकसित माना जायेगा। कोरे अक्षर ज्ञान से समुचित एवं सर्वांगीण विकास संभव नहीं है। दुनिया के उन सभी नेताओं से हमें कह देना चाहिए कि जो संघर्षों के बीज बोते हैं तथा अपने देश-समाज की बुराइयां दूसरों के मत्थे मढ़ते हैं...कि आने वाली पीढ़ी आपका मूल्यांकन इस आधार पर नहीं करेगी कि आपने कितना ध्वंश किया है बल्कि इस आधार पर करेगी कि आपने मानव ाकिस के लिए क्या और कितना किया?

औरों के काम जो आते हैं,
मर कर भी अमर हो जाते हैं।
दुनिया वालों के होठों पर,
उनकी ही कहानी होती है।

मानव ही नहीं, पशु-पक्षी भी खाने, सोने, संभोग और संरक्षण में पटु होते हैं। अधिक खाना या होटलों-रेस्तारों में विविध खाना, आरामदायक बिस्तरों में सोना, बन्दूकों या मिसाइलों से अपनी रक्षा पर विचार करना, कंडोम-पिल्स के सहारे सुरक्षित संभोग करना, इससे तो हम एक अच्छे पशु से अधिक कुछ भी नहीं बन रहे हैं। पशुओं का जीवन जीने से मनुष्य न तो सुखी होगा और न ही सफल। यह सबके निम्नतर स्तरों पर भटकाने वाली शिक्षा है। हमें मानव होने के नाते, इससे बहुत ऊपर की, उच्च स्तर की शिक्षा की जरूरत है। जो बचपन से आरंभ होकर जीवन भर चलती है। ऐसी शिक्षा जो हमें अस्थाई शरीर और स्थाई आत्मा में भेद करना सिखाए! जो शिक्षा हमें आंख खोल कर दिखा दे कि यह संसार हमारी सम्पति नहीं है। न तो हमें इसपर अधिकार करने की लड़ाई लड़ी है और न ही आपस में मिल-बांट कर इसे भोगना है। परमात्मा ही सबका नियंत्रक एवं स्वामी है। हमें एक ऐसी शिक्षा चाहिए, जो हमारे नजरिए को बदल सके, जो हमारे जीवन जीने के तरीकों को बदल सके। हमें झूठे जगत से सच्चे की ओर, अंधकार से प्रकाश की ओर तथा मृत्यु से अमरता की ओर जाना है।

एक दिन हमारा पूरा जीवन चंद लम्हों के लिए हमारी आंखों के आगे झलकेगा, कोशिश करें कि यह देखने लायक हो। ऐसा न हो कि जीवन की उस फिल्म को देखकर हमें शर्मिंदा होना पड़े। जीवन की विडम्बना यह नहीं है कि हम अपने लक्ष्य तक नहीं पहुंचे बल्कि विडम्बना यह है कि हमारे पास पहुंचने के लिए कोई लक्ष्य ही नहीं था। हम अपना लक्ष्य निर्धारित कर—सफल व्यवसायी, वकील, इंजीनियर, डॉक्टर, कलक्टर/एस. पी., सेना में उच्च अधिकारी आदि जो भी बनना चाहें अवश्य बने। यह सब बने या ना बने, पर 'आदमी' अवश्य बने।

तूं अगर इंसान है, तो काम अच्छा कर कोई,
याद ये सारा जहां, तुझको करेगा एक दिन।

❑

सम्पूर्ण क्रांति सम्मेलन
04-05 अप्रैल, 2015 : मुम्बई

जनमुक्ति संघर्ष वाहिनी (जसवा) अपनी स्थापना के 25 वर्ष पूरे होने के अवसर पर सम्पूर्ण क्रांति सम्मेलन का आयोजन कर रही है। ज्ञातव्य है कि 25 वर्ष पहले 1989 में जनता केन्द्र मुम्बई में जसवा का गठन हुआ था। बहुआयामी जनसंघर्षों के जरिए समाज-परिवर्तन तथा समता-स्वतंत्रता और मानवता के लिए प्रातिबद्ध जनमुक्ति संघर्ष वाहिनी (जसवा) शांतिमयता और निर्दलीयता की राह पर चलने की निष्ठा रखती है। भारत में 1974 के जन आंदोलन के दौरान छात्र-युवा संघर्ष वाहिनी की स्थापना लोकनायक जयप्रकाश नारायण द्वारा की गयी थी। जनमुक्ति संघर्ष वाहिनी (जसवा) छात्र-युवा संघर्ष वाहिनी का ही विस्तार है।

सम्पूर्ण क्रांति धारा नूतन विश्व को परिभाषित और अनूदित करने में जुटे उन समूहों और नेतृत्व के साथ साझा बनाने की स्वभाविक आकांक्षा रखती है, जो पुराने डॉगमा से बाहर निकलने के प्रति सचेत हैं।

इसी चाह के साथ भारत सहित दुनिया के तमाम हिस्सों में कमोबेश इस लक्ष्य को हासिल करने में लगी-जुटी विभिन्न संघर्षधाराओं के बीच सकारात्मक संवाद बनाने और उनकी एकजुटता का कोई रास्ता तलाशने की कोशिश हम इस सम्मेलन के जरिये करना चाहते हैं। इस उद्देश्य के साथ आयोजित मुम्बई सम्मेलन में हम आपको साग्रह आमंत्रित करते हैं।

निवेदक

जयंत दिवाण, अरविन्द अंजुम, तृप्ति, मनीषा, ज्ञानेन्द्र, प्रियदर्शी
जनमुक्ति संघर्ष वाहिनी, शांताश्रम, 299, तारदेव रोड, नाना चौक, मुम्बई-07
संपर्क : 9323657447/9431113667/9427145989/9474549773/9422866223/9431077343
ई-मेल : sampoorn.kranti1975@gmail.com

गतिविधियां एवं समाचार

असम में शांति के लिए युवा-समाज को तैयार करना जरूरी है : चंदन पाल

शंकरदेव, माधवदेव, आजान फकीर के देश असम के जीवन में खून-खराबा पीछा नहीं छोड़ रहा है, जो एक गंभीर दुःख की बात है। असम विभिन्न प्रकार की भाषा, बोली, संस्कृति, रहन-सहन, खानपान की समृद्ध परम्पराओं से भरा है। दूसरों को अपना बनाने में भी असम आगे है।

ऐसे सुन्दर असम में वर्ष 2012 में जब बोडो और मुस्लिम के बीच दंगा के कारण बीटीएडी के कई जिलों में 114 लोगों की मौत हुईं, हजारों घर जलाये गये, करीब 5 लाख लोग बेघर होकर शरणार्थी शिविर में आश्रय लिए, तब गांधीजनों (सर्व सेवा संघ, गांधी शांति प्रतिष्ठान, गुजरात विद्यापीठ इत्यादि) द्वारा शांति के कार्य शुरू किये गये। पहले ढाई साल में लगातार प्रयास से धीरे-धीरे क्षेत्र में शांति लौट रही थी, तब फिर से 23 दिसंबर, 2014 को उग्रवादियों द्वारा हिंसा भड़कायी गयी। शोनितपुर, कोकराझार, चिरांग और उदालगुड़ी में 81 लोगों को उग्रवादियों ने फिर मार दिया और प्रतिक्रिया स्वरूप दोनों पक्षों (आदिवासी और बोडो) द्वारा घर जलाये गये। करीब ढाई लाख लोग शरणार्थी शिविर में चले गये। लेकिन आतंकवादियों ने जिस ढंग की क्रूरता, बर्बरता के साथ हिंसा एवं नवजात शिशुओं की क्रूर हत्याएं कीं, वह अत्यन्त निन्दनीय है।

इस बार जो दंगा हुआ वह बोडो और आदिवासी (संथाल, उरांव, मुंडा) के बीच में हुआ। आमतौर से वहां के आदिवासी बहुत ही गरीब हैं। खासकर चाय बागान में और खेती में काम करते हैं। वे शांति प्रवृत्ति के हैं और अपने समाज में अति गरीबी के बावजूद भी प्रसन्न रहते हैं।

इस नरसंहार की इस घटना के बाद सर्व सेवा संघ, गांधी शांति प्रतिष्ठान की एक छोटी टीम (धमेन्द्र राजपूत-महाराष्ट्र, नटसुर्या महापात्र-प. बं., जयनाल हुसैन-त्रिपुरा और चंदनपाल, मंत्री, सर्व सेवा संघ) तुरंत वहां पहुंच गयी और क्षतिग्रस्त इलाके के लोगों से मिलकर परिस्थिति को समझा। लोगों से मिलकर एक-दूसरे समुदाय के प्रति सद्भाव रखने तथा गांव-घर न छोड़ने के लिए प्रयास किया। लोगों से संपर्क कर शांति कमेटी गठित की गयी। प्रशासन से मिलकर इस शांति-कार्य को आगे बढ़ाया गया। कुछ शिविरों में राहत सामग्री और सुरक्षा के बारे में जिला उपायुक्त (डिप्टी कमिश्नर) और पुलिस अधिकारी से मिलकर सहायता पहुंचाने की भी व्यवस्था की गयी है। क्षेत्र के एमएलए सुश्री प्रमिला रानी का, बीटीसी के डेपुटी चीफ श्री काम्पा बरगोथारी से विस्मृत चर्चा करके समाधान खोजने का प्रयास किया गया। ❑

राष्ट्रीय महिला-शिविर : 20-22 फरवरी, 2015 : जलगांव

सर्व सेवा संघ द्वारा माता कस्तूरबा गांधी की पुण्यतिथि पर 20 से 22 फरवरी, 2015 तक जलगांव (महाराष्ट्र) के महात्मा गांधी शोध संस्थान में राष्ट्रीय महिला शिविर का आयोजन किया है। इस शिविर में देशभर की महिला सर्वोदय कार्यकता, सर्वोदय परिवारों की सक्रिय महिलाएं तथा गांधी-विचार से जुड़ीं अन्य बहनें शामिल होंगी।

इस शिविर का उद्देश्य महिलाओं की दक्षता और वैचारिक आधार को विकसित करना तथा सर्वोदय आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी को बढ़ाना है। शिविर को आदरणीय राधाबहन भट्ट, डॉ. रामजी सिंह सहित सर्वोदय के वरिष्ठ चिन्तकों का मार्गदर्शन मिलेगा।

गांधी शोध संस्थान, गांधी विचार की एक अनूठी संस्था है। आदरणीय भँवरलाल जैन के प्रयत्नों से यह एक 'तीर्थ' हो गया है। अब तो इसका नाम भी 'गांधीतीर्थ' हो गया। इस तीर्थ का पावन स्पर्श भी हम सबको मिलेगा।

जलगांव, महाराष्ट्र के भुसावल एवं मुम्बई रेललाइन पर अवस्थित है। देश के सभी प्रमुख भागों से यहां आने के लिए सीधी गाड़ियां हैं। जो गाड़ियां जलगांव नहीं रुकतीं, ऐसी गाड़ियों से आने वाली बहनें भुसावल स्टेशन पर उतरें। भुसावल से जलगांव की दूरी मात्र 25 किमी है।

शिविरार्थियों को 19 फरवरी की शाम तक जलगांव पहुंचना है। शिविर 22 फरवरी की शाम 5 बजे तक चलेगा। शिविर में आने वाली बहनें समय से रेल आरक्षण करवा लें।

आपसे निवेदन है कि आपके प्रदेश से उक्त भूमिका वाली बहनों को शिविर में भेजें। उनके नाम, पते और फोन नंबर हमें भी भेजें ताकि हम भी उनसे संपर्क कर सकें। ऐसी महिलाओं को प्राथमिकता दें, जिनसे भविष्य में सक्रिय भूमिका निभाने की अपेक्षा है।

शिविर की तारीख : 20-21-22 फरवरी, 2015 (शुक्रवार, शनिवार, रविवार)

शिविर स्थल : गांधी शोध संस्थान, गांधीतीर्थ, जैन हिल्स, जलगांव-425001 (महाराष्ट्र), फोन : 0257-2264939

आवश्यक जानकारी हेतु आप
सर्व सेवा संघ, महादेव भाई भवन,
सेवाग्राम-442102, वर्धा (महाराष्ट्र),
फोन : 07152-284061,
ई-मेल : sarvasevasangha@hotmail.com
पर संपर्क कर सकते हैं।

शोभा शिराढोणकर, मंत्री **महादेव विद्रोही, अध्यक्ष**

VSI-(E) 003 For the Year - 2015 to 2017 सर्वोदय जगत : 1-15 फरवरी, 2015 Regd.No. R.N.I.35495/78

कविता

चलो रे पथिक

❑ मलंग आदम

चलो रे पथिक
तन्मय उजाला उधार लें
बस खल ही हैं, पगडंडियों की दौड़
चमकने दें हांफती लालटेन
किसी झोपड़े में
दो सूखी रोटियों की संतुष्टि के बीच
पीपले कदकहों से
इसे तनिक आराम दें...
लौटती है रोज
बकुल के जंगलों से बंजारन
लिए कांटों का प्रेम
सांवली कमर पर पनीला सा श्रम
लिखता है चूल्हा
आकाश की सतह पर एक कथा
धुनें की एक आतुर भूख
अंधेरे की स्याही से
पढ़ते चलें दुनिया की सबसे
रूमानी कहानी...बहती है नदी
चमकते पहाड़ों से उतर कर
प्यासे उदासे धार में
उकेरती है सूखे पाटों के बीच
कर्तव्य की भींगी सी कविता
विलुप्त हीरक ओढ़ लेती है रेत
बहना बंद नहीं करती
चूमते चलें उस धार में
संघर्ष करती नदी...
चलो रे पथिक, की अभी दूर है
अंतिम सांस वाली हवा
धौंकनी फूंकती है कलेजा
काया रूप बदलती है
बाकी है अनगिनत रूपों का परिचय
चलो रे पथिक
जीवन की गलबहियां डाले
खोजते हैं मृत्यु
अंतिम पहचान होने तक रूको नहीं
चलो रे पथिक, बस चलते ही रहो
चलो रे पथिक ❑

और अंततः

गांधी की हत्या : क्या सच, क्या झूठ गांव-गांव तक ले जायेंगे

❑ अशोक मोती

केन्द्र में भारतीय जनता पार्टी के सरकार के बनते ही गांधी के विचारों को गलत ढंग से पेश करने के साथ-साथ गांधी विचारों को हड़पने की कोशिश काफी तेज हुई है। भाजपा की केन्द्र में आते ही राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ ने अपना असली चेहरा प्रकट कर दिया है। विचारों को हड़पने की बौद्धिक राजनीति तो उन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन से ही चला रखी है। सबसे आश्चर्यजनक है इनका दोहरा चरित्र।

गोलवलकर के शब्द "भारत सिर्फ हिन्दुओं का देश है और जो लोग हिन्दू कल्चर में नहीं घुलमिल सके, वे लोग विदेशी हैं और विदेशी अल्पसंख्यक की हैसियत से ही इस देश में रह सकते हैं" का जुमला अधिक मुखरित होने लगे हैं। लेकिन यही गोलवलकर गांधी का स्वागत करते, गांधी को हिन्दू धर्म की महान आत्मा बतलाते हैं और फिर उनकी छाती गोलियों से छलनी भी करते हैं। अब उन्होंने गांधी की हत्यारे की मूर्तियां लगाने की कवायद भी शुरू की है और चारों ओर लव जिहाद, घर-वापसी, गोडसे मूर्ति स्थापना, दूसरे धर्मावलम्बियों में दहशत पैदा करने की तमाम कोशिशें हो रही हैं और वह संचार माध्यम के जो भी मंच हैं, हर जगह अपने बड़बोलेपन से लोगों को भयभीत करने लगे हैं। धर्म और राजनीति का ऐसा भीतरी गठजोड़ स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद उभरकर बाहर कभी नहीं दिखा। लोग सहमे हुए हैं। इस बीच संविधान में वर्णित सेक्यूलर और समाजवाद शब्द से इन्हें चीढ़ हो रही है और धर्मान्धिता की हद पार कर इनके साधु-संतों ने भड़काऊ बातें बकना प्रारंभ किया है। गोडसे की मूर्ति बनाने की बात कर ही रहे थे अब इन लोगों ने हिन्दुओं को दस बच्चे पैदा करने की भी नसीहत दे रहे हैं। यानी वे हिन्दू महिलाओं-बेटियों को बच्चा जनने की मशीन बनाने की बात करने लगे हैं। अल्पसंख्यकों के विरुद्ध कई अनरगल बातें चारों ओर सुनाई पड़ रही हैं। देश में एक सन्नाटा स्वाभाविक है लेकिन आशा है इसका जवाब दिल्ली के आसन्न चुनाव में जनता द्वारा इन्हें दी जा सके।

इस बीच सर्व सेवा संघ गांधी-विचारों को जन-जन तक खासकर युवाओं तक पहुंचाने के लिए अपनी योजनाओं को मूर्त रूप देने का निश्चय किया। 30 जनवरी शहादत दिवस पर पूरे देश में उपवास करने की सूचनाएं मिली हैं। सर्वोदय जगत को भी हमने गांधी विचारों को जन-जन तक पहुंचाने के साथ-साथ ऐसी अफवाहों को दूर करने का हथियार बनाया है। सोशल मीडिया पर भी हमारी कोशिश है कि लोगों में सामंजस्य को टूटने से रोका जा सके। 25-26 मार्च 2015 को दिल्ली में राष्ट्रीय उपवास किया जायेगा। सर्व सेवा संघ ने स्व. चुनीभाई द्वारा लिखी पुस्तक 'गांधी की हत्या : क्या सच, क्या झूठ' की एक लाख प्रतियां मुद्रित कर जन-जन तक पहुंचाने का निर्णय लिया है, साथ ही इस पुस्तक का अंग्रेजी संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है। हम सर्वधर्म समभाव के कार्यक्रम के तहत सर्वधर्म प्रार्थना पूरे देश में चलायेंगे, जिससे कि राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के विचारों के कुत्सित राजनीति को विफल किया जा सके।

हम अहिंसा में विश्वास करने वाले गांधीजन भयभीत होने वाले नहीं हैं और स्वराज और स्वशासन की जगह सुशासन से संतुष्ट वाले भी नहीं हैं। हम गांधीजन मौजूदा शासनतंत्र की बुराइयों से अच्छी तरह वाकिफ हैं, और देशप्रेम, सर्वधर्म समभाव, स्वदेशी प्रेम तथा स्वराज्य प्राप्ति के लिए हमारी विनम्र कोशिश जारी रहेगी। गांधी ने कहा था कि 'स्वराज्य मृत्यु के भय का त्याग है', हमने भी मृत्यु के भय का त्याग कर दिया है और देश में नवजागरण हेतु अहिंसक संघर्षों के माध्यम से अहिंसा पर लोकशक्ति को खड़ा करने में जुटे हैं। ❑

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) के लिए महामंत्री, शेख हुसैन द्वारा सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001 से प्रकाशित तथा सुरभि प्रिन्टर्स, इंडियन प्रेस कॉलोनी, मलदहिया वाराणसी से मुद्रित। संपादक : बिमल कुमार, कार्य.संपादक : अशोक मोती। छपी प्रतियाँ : 1450